मन्त्र-सिद्धि
का
उपाय

मन्त्र - सिद्धि का उपाय

[संशोधित एवं परिवर्धित]

"मननात् त्रायते इति मन्त्रः"
जिसे मनन (चिन्तन या जप) करने से रक्षा हो, वह
'मन्त्र' है।

***

पण्डित भद्रशील शर्मा

प्रकाशक
कल्याण मन्दिर प्रकाशन
अलोपीबाग मार्ग, प्रयाग- २११००६ (उ०प्र०)

प्रकाशक

कल्याण मन्दिर प्रकाशन,

अलोपीबाग मार्ग,

प्रयाग-२११००६

कल्पे दृष्ट्वा तु यो मन्त्रं, जपते स विमूढ़-धीः।
मूल-नाशो भवेत् तस्य, फलमस्य सुदूरतः॥

पुस्तक में देखकर जो मन्त्र जपता है, उसकी हानि होती है।

गुरोर्मुखान्महा-विद्यां, गृह्णीयात् पाप-नाशिनीम्।

गुरु के मुख से महा-विद्या (मन्त्र) को ग्रहण करे।

प्रथम संस्करण, चैत्र नवरात्र, २०५२ वि० (१अप्रैल,१९९५)

मूल्य छः रु०

मुद्रक

परा वाणी प्रेस,

प्रयाग-२११००६

अनुक्रमणिका

भूमिका

आज से लगभग ५० वर्ष पूर्व **'कौल-कल्पतरु' स्व० पण्डित देवीदत्त शुक्ल** के मन में यह विचार आया था कि लोक-भाषा हिन्दी में **'मन्त्र-साधना'** के मूल सिद्धान्तों का सरल स्पष्टीकरण किया जाना चाहिए। फल-स्वरूप उन्होंने इस विषय के साहित्य-सृजन के लिए प्रयास प्रारम्भ किया, जो बहुत कुछ सफल हुआ।

प्रस्तुत पुस्तक **पूज्य शुक्ल जी** के उक्त प्रयास का प्रारम्भिक पुष्प है। इसकी उपयोगिता इसी बात से स्पष्ट है कि यह इसका छठा संस्करण प्रकाश में आ रहा है। इस पुस्तक की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि थोड़े में ही **'मन्त्र-साधना'** की प्रायः सभी महत्त्व-पूर्ण बातों का विवेचन इसमें इस प्रकार किया गया है कि सामान्य पढ़े-लिखे लोग भी उसे भले प्रकार हृदयङ्गम कर सकते हैं और **'मन्त्र-साधना'** को अपना कर अपना यह लोक और परलोक बना सकते हैं।

इस विषय की एक-मात्र मासिक पत्रिका **'चण्डी'**, जिसके प्रकाशन का श्रीगणेश **पूज्य शुक्ल जी** ने ही किया था, आज भी बराबर प्रकाशित हो रही है तथा अन्य अनेक नई पुस्तकों का प्रकाशन भी निरन्तर हो रहा है, जिनसे साधकों की विविध गुत्थियाँ सुलझती जा रही हैं।

हमें विश्वास है कि **'मन्त्र-सिद्धि का उपाय'** पुस्तक के इस नए संस्करण से पाठकों को विशेष लाभ होगा, क्योंकि इस संस्करण में **'स्त्री-गुरु** की महिमा' और **'दश-महाविद्या** एवं **पंच-देवताओं के मन्त्र'** इन दो विषयों को और जोड़ दिया गया है।

वैशाख पूर्णिमा २०३६ —प्रकाशक

पूर्व-कथन

काल-चक्र के प्रभाव से सदियों से भारतवर्ष संसार के राष्ट्रों के बीच अपने पद के अनुरूप अपने स्थान में स्थित नहीं है, तथापि उसके गौरव का लोहा संसार के उन्नत-से-उन्नत राष्ट्र उसकी इस दीनावस्था में भी मानते हैं। इसका मूल कारण हमारे उन प्राचीन-तम तपोधन तत्त्व-दर्शी पूर्वजों की अमूल्य बपौती है, जिन्होंने उसे अपने तत्त्व-दर्शन से प्राप्त किया था। वह उनकी देन आज भी दरिद्र भारत एक पोटली में छिपाये अपने दुर्दिनों को शान्ति के साथ बिता रहा है। यह उसका वही अमूल्य धन है, जिसके कारण संसार के शक्ति-शाली गर्वोन्मत्त महान् राष्ट्र भी उसे आदर की दृष्टि से ही नहीं देख रहे हैं, किन्तु उसके उस रहस्य का भेद जानने को भी उत्सुक रहते हैं।

भारत की प्राचीन संस्कृति का इतिहास जाननेवालों को यह बात भले प्रकार ज्ञात है कि इस देश के प्राचीनतम महर्षियों ने अपने तत्त्व-दर्शन के प्रयास में सर्वप्रथम ब्रह्मा से वेद-विद्या उपलब्ध की थी, जिसके द्वारा वे इह-लोक-तत्त्व और पर-लोक-तत्त्व दोनों ही में सामञ्जस्य स्थापित करने में समर्थ हुए थे। उसी प्रकार तत्कालीन महर्षियों के एक समूह ने विष्णुदेव से भक्ति-विद्या की उपलब्धि की थी और उसके द्वारा उन्होंने आत्म-तत्त्व और परमात्म-तत्त्व दोनों में सरस ऐक्य-भाव स्थापित किया था। तद्वत् ही उनके एक समूह ने सदाशिव को प्रसन्न करके मन्त्र-विद्या की प्राप्ति की थी, जिसके द्वारा वे लौकिक जीवन से लेकर पारलौकिक जीवन के

परे पहुँच कर मूल-तत्व का साक्षात्कार करने में समर्थ हुए थे।

ये तीनों ही विद्यायें भारतीय संस्कृति की आधार-शिला के रूप में आज भी विद्यमान हैं और भारतीय अपने-अपने संस्कारों के अनुसार यथा-मात्रा उन्हें प्राप्त किये हुए हैं। इन तीनों विद्याओं में मन्त्र-विद्या सदैव रहस्य की बात रही है और इस समय भी वह पहले ही की भाँति रहस्यपूर्ण है। कलियुग के पहले, जैसा कि संस्कृत के प्राचीन ग्रन्थों से ज्ञात होता है, इस मन्त्र-विद्या की उपलब्धि विशेष-विशेष अधिकारी व्यक्ति ही कर पाते थे, परन्तु कलियुग में जब वेद-विद्या का महत्त्व घट चला और वह केवल एक श्रेणी के विशिष्ट व्यक्तियों तक ही सीमित रह गई, तब धर्म में भारी ग्लानि उत्पन्न हुई। ऐसी स्थिति के आ जाने पर परम दया-मयी जगज्जननी पार्वती को क्षोभ हुआ और उन्होंने महादेव से आग्रह किया कि लोक-कल्याण के निमित्त मन्त्र-विद्या का उपदेश सर्व-साधारण को किया जाय। युग-धर्म के अनुसार वह मन्त्र-विद्या तत्कालीन ऋषियों के द्वारा लोक-कल्याण के लिए सर्व-साधारण पर प्रकट की गई।

आज उस विद्या का सारे समाज में व्यापक प्रचार है, परन्तु खेद की बात है कि उसकी साधना की विशेष प्रक्रिया का पहले जैसा प्रचार नहीं रहा। सर्व-साधारण की सुविधा के लिए हमारे आचार्य उस प्रक्रिया को इतना सरल रूप देते गये कि साधक को शीघ्र-से-शीघ्र मन्त्र की सिद्धि हो जाय। यह इसी भावना का परिणाम है कि आज उस प्रक्रिया का एकदम लोप-सा हो गया है। सरलता की भावना ने वस्तुतः प्रक्रिया का उन्मूलन किया है। उसका परिणाम भी वही हुआ, जो होना चाहिए। लोग मन्त्र जानते हैं, सरल 'नुस्खों' के अनुसार उनका साधन भी करते हैं, परन्तु परिणाम कुछ नहीं होता।

यह एक मोटी बात है कि जो जितना अधिक व्यायामशील होगा, उसका शरीर भी तद्-वत् ही बलवान होगा। यही बात मन्त्र

की साधना में है। साधना में जितना ही परिश्रम किया जायगा, उसी अनुपात से उसमें सफलता भी प्राप्त होगी, परन्तु शीघ्र सिद्धि की प्राप्ति की लालसा से साधक लोग सरल-से-सरल उपाय ढूँढ़ते फिरते हैं। कोई परिश्रम करना नहीं चाहता। यद्यपि यह बात सबको ज्ञात है कि प्राचीन काल में मन्त्र की साधना में हमारे पूर्वज कितना घोर परिश्रम किया करते थे, तब कहीं उन्हें अव्यर्थ सिद्धि की प्राप्ति हुआ करती थी।

यह सब जानते हुए भी आज के साधक ऐसे गुरु की ही खोज में रहते हैं, जो उन्हें चुटकी बजाते ही मन्त्र सिद्ध करवा दे। यह भारी भूल है। शास्त्र-निर्दिष्ट मार्ग को छोड़कर कदापि मन्त्र की वास्तविक सिद्धि नहीं हो सकती। यहाँ हम ऐसे ही उपाय की चर्चा करेंगे, जो शास्त्र-द्वारा प्रतिपादित है और जिसका अनुसरण करके कोई भी साधक अपने मन्त्र की साधना में सफल-मनोरथ हो सकता है।

मन्त्र की प्राप्ति

मन्त्र-द्वारा इष्ट-देवता की उपासना करना मन्त्र-विद्या है। वह मन्त्र गुरुदेव से मिलता है। प्रारम्भ में मन्त्र-विद्या की प्राप्ति सदा-शिव से हमारे पूर्वज ऋषियों ने की थी। उन्हीं से वह परम्परागत प्राप्त होती रही है। आज भी मन्त्र-शास्त्रियों के पास वह विद्या उसी क्रम से ज्ञात है। उन्हीं से भविष्य में भी प्राप्त होती रहेगी। यही क्रम है। अतएव मन्त्र-साधक को अपने इष्ट-देवता का मन्त्र किसी विशिष्ट साधक से ही प्राप्त करना चाहिए।

जिसने सविधि गुरु-मुख से मन्त्र-विद्या प्राप्त की है तथा जिसके पूर्णाभिषेक तक के सारे संस्कार हो चुके हों, वही व्यक्ति मन्त्र देने का अधिकार रखता है, परन्तु आज की परिस्थिति बहुत बिगड़ गई है। कितने ही लोग पुस्तकों से मन्त्र जानकर मन्त्र-साधना करते दिखाई देते हैं; कितने ही लोग स्वयं किसी अधिकारी गुरु से मन्त्र न प्राप्त कर दूसरों को मन्त्र देते रहते हैं। ऐसे भी गुरु हैं, जो दीक्षित भर होते हैं अर्थात् गुरु से मन्त्र का उपदेश मात्र प्राप्त कर मन्त्र-दाता बन बैठते हैं। ये तीनों ही गुरु तथा साधक अनधिकारी हैं और इनकी की हुई सारी मान्त्रिक साधना फल-प्रद नहीं होती। इसी से कहा गया है कि गुरु खोज कर बनाना चाहिए।

जिस व्यक्ति ने शास्त्र-विधि के अनुसार मन्त्र-दीक्षा पाई हो तथा जिसने उसका पूर्ण साधन भी किया हो और जिसने एक-एक करके पूर्णाभिषेक तक के सारे संस्कार कराये हों, ऐसे ही श्रेष्ठ व्यक्ति से मन्त्र-दीक्षा लेनी चाहिये। आज ऐसे मन्त्र-दाता गुरुओं

का, जैसा समझा जाता है, वैसा अभाव नहीं है। जो भी चाहे, ऐसे श्रेष्ठ गुरुओं से मन्त्र-दीक्षा प्राप्त कर सकता है, अभाव है तो सद्-शिष्यों का।

आज के शिष्य मन्त्र को लेना चाहते हैं, परन्तु साधना करने के परिश्रम से दूर रहना चाहते हैं। इसी से वे लोलुपता-वश उसी गुरु को अपना गुरु बना लेना अच्छा समझते हैं, जो जल्दी-से-जल्दी मन्त्र का उपदेश कर उन्हें अपना शिष्य बना ले। साथ ही उनको दुःखों और कष्टों से उनको रक्षा करने का वचन भी दे दे। ऐसे भावुक शिष्यों के लिये उनकी रुचि के अनुसार जगह-जगह मन्त्र देनेवाले गुरु बैठे मिल जाते हैं, परन्तु यह प्रणाली मन्त्र-शास्त्र से अनुमोदित नहीं है और शास्त्र-विधि की उपेक्षा करना लाभप्रद नहीं है।

यही कारण है कि ऐसे गुरुओं और शिष्यों से आज मन्त्र-विद्या का उपहास हो रहा है; परन्तु मन्त्र-विद्या का महत्व किसी प्रकार के निन्दा-वाद से घट नहीं सकता। उसका ज्ञान प्राप्त करने के लिए श्रद्धा और विश्वास की जरूरत है और उससे भी अधिक जरूरत है सद्-गुरु से सविधि उसे प्राप्त करने की।

विधि की व्यवस्था आचार्य लोगों को अवगत है। कान फूंकने को दीक्षा नहीं कहते। उसकी विस्तृत विधि है, जिसके द्वारा मन्त्र प्राप्त करके ही मन्त्र-साधना में सफलता प्राप्त होती है, अन्यथा नहीं। जहाँ सद्-गुरु से सविधि मन्त्र लेने का विधान है, वहाँ यह भी है कि कब और किस समय मन्त्र ग्रहण करना चाहिये। इसके लिए हम यहाँ एक छोटी-सी सारिणी देते हैं—

दीक्षा के लिये महीनों में चैत्र और मलमास वर्जित हैं। दूसरे महीनों में शुक्ल-पक्ष और कृष्ण-पक्ष दोनों ही में दीक्षा ली जा सकती है। वैसे शुक्ल-पक्ष उत्तम है। इसी प्रकार तिथियों में द्वितीया, तृतीया, पञ्चमी, सप्तमी, दशमी, एकादशी, द्वादशी और पूर्णिमा

दीक्षा के लिये शुभ मानी गई हैं। शेष तिथियों में दीक्षा नहीं ग्रहण करनी चाहिए। दिनों में शनि और मंगल को छोड़कर शेष दिन दीक्षा के लिये शुभ हैं। नक्षत्रों में अश्विनी, रोहिणी, मृगशिरा, पुनर्वसु, पुष्य, मघा, पूर्वा फाल्गुनी से स्वाती तक। अनुराधा, मूल, पूर्वोत्तराषाढ़ा, शतभिषा, पूर्वोत्तर भाद्रपद और रेवती नक्षत्र दीक्षा के लिये उत्तम बताये गये हैं। इसी प्रकार वृष, सिंह, कन्या, धनुष और मीन ये लग्न उत्तम हैं।

इस प्रकार मन्त्र उपयुक्त मुहूर्त में ही गुरुदेव से प्राप्त करना चाहिये। ऐसा करने से मन्त्र के सिद्ध होने में साधक को विशेष सुविधा होती है और मन्त्र का सिद्ध होना किसी भी साधक के लिये परमावश्यक है।

मन्त्रसिद्धि के सम्बन्ध में परम पूज्य 'गुप्तावतार' १००८ श्रीमान् बाबा मोतीलाल जी महाराज का कथन है कि—

"जिस आश्रय से व्यक्ति में ऊर्ध्व-गामिनी उन्नति-गति उत्पन्न होती है, उसका कारण अवश्य कोई 'शक्ति' होगी। उस शक्ति का कोई व्यक्त रूप अवश्य होगा। यही 'बीज' है। गुरु लोग इसी को अपने में बोने की सलाह देते हैं। यही सलाह 'मन्त्र' है और उस मन्त्र-बीज के विस्फोट में जो शक्ति प्रकट होती है, वही 'दैवत' है। उससे प्रकट हुई गति उन्नति है और वह गति अपने में 'गुरु-तत्व' को उत्पन्न करती है, उसे ही 'सिद्धि' कहते हैं।"

इस प्रकार यह रहस्य ज्ञात हो जाता है कि मन्त्र-सिद्धि के मूल में बीज-मन्त्र का विस्फोट है। श्रीगुरुदेव ने जो मन्त्र प्रदान किया है, उसका हृदय में सतत जप करने से विलक्षण शक्ति उत्पन्न होती है। उस शक्ति से कुण्डलिनी उत्प्रेरित्त होती है और कुण्डलिनी के जाग्रत होने पर उक्त बीज-मन्त्र का विस्फोट होता है। वही इष्ट-देव को प्रत्यक्ष कर सिद्धि प्रदान करता है।

—✻—

दीक्षा-संस्कार

दीक्षा पा जाने से दीक्षा पानेवाला अपने इष्ट की साधना करने का अधिकारी बन जाता है अर्थात् दीक्षा का संस्कार होने पर उसका प्रभाव पड़ता है। इस संस्कार के प्रभाव से दीक्षित व्यक्ति के मन में एक नया भाव पैदा होता है, जिससे उसकी अपने इष्ट के प्रति श्रद्धा दृढ़ हो जाती है और उसका इष्ट-साधना के प्रति विश्वास भी बढ़ जाता है।

दीक्षा-संस्कार की विस्तृत पद्धतियाँ तन्त्र-ग्रन्थों में लिखी मिलती हैं। उन पद्धतियों के अनुसार दीक्षा-संस्कार करने में समय भी लगता है और धन भी खर्च होता है, जो सबके मान की बात नहीं है। ऐसी भी पद्धतियाँ लिखी मिलती हैं, जिनसे सामान्य रीति से दीक्षा-संस्कार सम्पन्न हो जाता है। जो व्यक्ति दीक्षा-संस्कार नहीं करवा सकते, उनके लिये मन्त्र का उपदेश मात्र कर देने की व्यवस्था कर दी गई है।

शास्त्र में सभी की सुविधा का ध्यान रखा गया है, परन्तु जहाँ तक सम्भव हो, दीक्षा-संस्कार करवाना अधिक लाभ-प्रद है। यह साधना का मूल है और यदि मूल ही कटा हुआ रहा, तो साधना की सफलता की उतनी आशा नहीं की जा सकती।

सर्व-साधारण के लिये जो सरल दीक्षा-पद्धति प्रचलित है, वह बहुत कुछ उपयुक्त है। शुभ मुहूर्त में गुरु को मनोनीत कर शिष्य गुरु करने की प्रतिज्ञा करता है और गुरु शिष्य का प्रस्ताव स्वीकार कर मन्त्र देने का वचन देता है। इसके बाद दीक्षा लेने का संकल्प

करवाकर गुरुदेव इष्ट-देवता का अर्चन करते हैं। अर्चन के अन्त में शिष्य के अध्वों का शोधन करके उसका पूजनकर उसे मन्त्र देने का अधिकारी बनाते हैं। तदनन्तर देनेवाले मन्त्र को स्वयं जप कर उसका शिष्य को उपदेश करते हैं। शिष्य भी इष्ट-देवता का पूजन कर गुरु से माला प्राप्त कर देवता के सम्मुख प्राप्त मन्त्र का जप करता है। इसके बाद इष्ट-देवता की अन्तिम आरती और पुष्पाञ्जलि होती है। फिर देवता का प्रसाद दोनों व्यक्ति ग्रहणकर पूजन का विसर्जन करते हैं।

यह दीक्षा-संस्कार एक ही दिन में समाप्त हो जाता है। इस संक्षिप्त संस्कार का भी शिष्य पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। तथापि यह कहना यहाँ ठीक होगा कि पूरी पद्धति—जैसे क्रियावती-दीक्षा-प्रणाली से प्राप्त दीक्षा अत्यधिक प्रभावशाली होती है, परन्तु वह प्रणाली अधिक विस्तृत तथा द्रव्य-साध्य है। उसकी अपेक्षा कलावती-दीक्षा-पद्धति अधिक सरल और सुसाध्य भी है। अतएव परिशिष्ट में उसकी विधि दी गयी है।

मंत्र-विचार

किस देवता का मन्त्र लेना चाहिये, यह भी कम विचारणीय नहीं है। देखा तो यह जाता है कि कुल-क्रमागत इष्ट-देवता के मन्त्र को ही अधिकतर लोग ग्रहण करते हैं, परन्तु अब यह क्रम बहुत कुछ छिन्न-भिन्न हो गया है। ऐसी दशा में लोग अपनी रुचि के देवता का मंत्र लेते हैं या मन्त्र-दाता की रुचि के देवता का।

इधर मन्त्रशास्त्र में यह विधान है कि अनुकूल देवता का ही मन्त्र ग्रहण करना चाहिये। इसके विचार का बहुत व्योरेवार वर्णन तन्त्र-ग्रन्थों में प्रचुरता से मिलता हैं। परन्तु उन्हीं तन्त्र-ग्रंथों में यह भी लिखा गया है कि काली, तारा, त्रिपुरा आदि दस महा-विद्याएँ सिद्ध-विद्यायें हैं और इनके मंत्र-ग्रहण करने में किसी तरह का विचार करने की आवश्यकता नहीं है।

ये दश महाविद्याएँ (१) काली, (२) तारा, (३) षोडशी, (४) भुवनेश्वरी, (५) धूमावती, (६) छिन्नमस्ता, (७) त्रिपुरभैरवी, (८) वगला, (९) मातङ्गी और (१०) कमला हैं। ये दो कुलों में विभक्त हैं। एक काली-कुल, दूसरा श्री-कुल। काली-कुल में काली, तारा, भुवनेश्वरी, छिन्नमस्ता—ये चार इन दश महा-विद्याओं में से हैं। इनके अतिरिक्त रक्त-काली, महिष-मर्दिनी, त्रिपुरा, दुर्गा, प्रत्यंगिरा—ये पाँच विद्यायें भी काली-कुल में गिनी जाती हैं। श्री-कुल में षोडशी अर्थात् त्रिपुर-सुन्दरी, त्रिपुर-भैरवी, बगला, कमला,

धूमावती, मातङ्गी—ये छः विद्यायें दस महा-विद्याओं में से हैं। इनके अतिरिक्त बाला, स्वप्नावती, मधुमती—ये तीन विद्याएँ भी श्री-कुल में गिनी जाती हैं।

दश महा-विद्याएँ और आठ विद्याएँ—ये अठारह सिद्ध-विद्याएँ हैं। इनके अतिरिक्त तन्त्रों में कुछ अन्य देवताओं का भी संकेत मिलता है, जिनके मन्त्र की दीक्षा ग्रहण करने से साधना में शीघ्र सफलता मिलती है। उन देवताओं के नाम इस प्रकार हैं—महा-भैरव, चण्डेश्वर, शूल-पाणि, वटुक-भैरव, नृसिंह, राम, कृष्ण, गोपाल, मार्तण्ड-भैरव, वेताल, गणपति, उच्छिष्ट-गणपति, श्मशान-भैरवी, उन्मुखी, चण्डिका, लक्ष्मी, महा-लक्ष्मी, वाग्भवा, सरस्वती आदि। इन देवताओं और देवियों के मन्त्र ग्रहण करके साधक शीघ्र अपनी साधना में सफल-मनोरथ होता है, परन्तु दस महा-विद्याओं को छोड़कर और सभी देवताओं के मन्त्रों के ग्रहण करने में विचार करना पड़ता है।

कौन देवता अपने कुल का है, अपनी राशि में पड़ता है, अपने ही गण का है, अपने नक्षत्र का है, शत्रु-भाव का है या मित्र-भाव का है, ऋणी है या धनी है—बिना इन सब बातों का विचार किये हुये जो व्यक्ति उमङ्ग या उत्साह में आकर मनमाने ढङ्ग से किसी देवता का मन्त्र ग्रहण करता है, तो लाभ के स्थान में उसकी हानि ही होती है। यह सब विचार मन्त्र-दाता आचार्य लोग भले प्रकार जानते हैं। अतएव मन्त्र ग्रहण करनेवाले को चाहिये कि वह भली प्रकार विचारकर देवता का मन्त्र ग्रहण करे, जिससे उसका इह-लोक और पर-लोक दोनों बनें। यहाँ पर संक्षेप में मन्त्र-विचार की प्रक्रिया दी जाती है।

सबसे पहले 'कुलाकुल-चक्र' से मन्त्र का विचार किया जाता है। इस चक्र के विचार की विधि यह है कि यदि साधक के नाम का पहला अक्षर और मन्त्र का पहला अक्षर एक ही कोष्ठक में पड़ता

हो, तो उस मन्त्र को अपने कुल का मन्त्र समझकर वह ग्रहण कर ले। यदि एक ही कोष्ठक में न पड़ता हो तो अपने मित्र के कोष्ठक का मन्त्र लिया जा सकता है। यहाँ जल भूमि का और वायु अग्नि का मित्र है। वायु भूमि का और अग्नि जल और भूमि का शत्रु है। आकाश सभी का मित्र है। जिस मन्त्र का पहला अक्षर शत्रु-तत्त्व

कुलाकुल-चक्र

वायु	अग्नि	भूमि	जल	आकाश
अ आ	इ ई	उ ऊ	ऋ ॠ	ऌ ॡ
ए	ऐ	ओ	औ	अं
क	ख	ग	घ	ङ
च	छ	ज	झ	ञ
ट	ठ	ड	ढ	ण
त	थ	द	ध	न
प	फ	ब	भ	म
य	र	ल	व	श
ष	क्ष	ळ	स	ह

में पड़ता हो, उसे साधक ग्रहण न करें। उक्त 'कुलाकुल-चक्र' यहाँ दिया गया है।

उदाहरण : 'हरिहर' नामक साधक के नाम का पहला अक्षर 'ह' आकाश-वर्ण है, जो सभी का मित्र है। अतः श्री हरिहर जी किसी भी वर्ण से आरम्भ होनेवाले मन्त्र को ग्रहण कर सकते हैं किन्तु जिन महानुभाव का नाम 'विनोद' है, उनके नाम का पहला अक्षर 'व' जल-वर्ण है। अतः वे अपने मित्र भूमि के किसी वर्ण से या सर्व-मित्र आकाश के किसी वर्ण से आरम्भ होनेवाले मन्त्र को ही ले सकते हैं।

कुलाकुल-चक्र के बाद 'राशि-चक्र' के द्वारा अपनी और मन्त्र की राशि देखनी चाहिये—
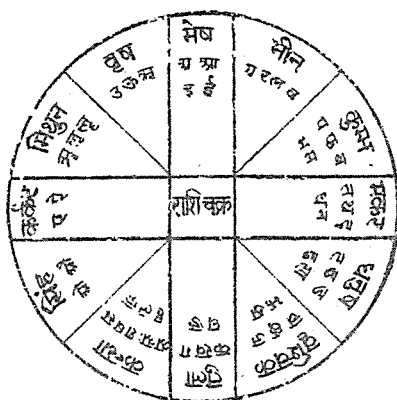
राशि-चक्र

उपरि-लिखित चक्र से पहले अपनी और मन्त्र की राशि निश्चित करे। फिर अपनी राशि से मन्त्र की राशि तक गिनकर फलाफल जान ले। छठें, आठवें या बारहवें में पड़े, तो मन्त्र श्रेष्ठ नहीं है; यदि पहले, पाँचवें या नवें में पड़े, तो वह मित्र है; दूसरे या दशवें में पड़े तो सेवक है; तीसरे, सातवें या ग्यारहवें में होने पर उसे पुष्टि-कर समझे तथा चौथे, आठवें या बारहवें में हो, तो घातक माने।

इसके बाद 'नक्षत्र-चक्र' से अपना और मन्त्र का गण देखना चाहिए। यदि साधक के नाम का पहला अक्षर मनुष्य-गण में हो, तो उसके लिए मनुष्य-गण का ही मन्त्र श्रेष्ठ है, देव-गण का भी उत्तम है परन्तु राक्षस-गण का घातक है। देव-गण के लिये मनुष्य-गण का मन्त्र मध्यम है और राक्षस-गण का शत्रु है। राक्षस-गण के लिये केवल राक्षस-गण का ही मन्त्र ठीक है। यह 'नक्षत्र-चक्र' अगले पृष्ठ १७ पर दिया गया है—

इसी चक्र से अपना और मन्त्र का नक्षत्र निश्चित करे। फिर अपने नक्षत्र से मन्त्र के नक्षत्र तक गिने। फल इस प्रकार जाने—

नक्षत्र-चक्र

अश्विनी	भरणी	कृत्तिका	रोहिणी	मृगशिरा	आर्द्रा	पुनर्वसु	पुष्य	आश्लेषा
अ आ	इ	ई उ ऊ	ऋ ॠ ऌ ॡ	ए	ऐ	ओ औ	क	ख ग
देव	नर	राक्षस	नर	देव	नर	देव	देव	राक्षस
मघा	पूर्वा फाल्गुनी	उत्तरा फाल्गुनी	हस्ता	चित्रा	स्वाती	विशाखा	अनुराधा	ज्येष्ठा
घ ङ	च	छ ज	झ ञ	ट ठ	ड	ढ ण	त थ द	ध
राक्षस	नर	नर	देव	राक्षस	देव	राक्षस	देव	राक्षस
मूल	पूर्वाषाढ़ा	उत्तराषाढ़ा	श्रवणा	धनिष्ठा	शतभिषा	पूर्वा भाद्रपद	उत्तरा भाद्रपद	रेवती
न प फ	ब	भ	म	य र	ल	व श	ष स ह	ळ क्ष अं अः
राक्षस	नर	नर	देव	राक्षस	राक्षस	नर	नर	देव

१ जन्म, २ सम्पत्, ३ विपत्, ४ क्षेम, ५ प्रत्यरि, ६ साधक, ७ वध, ८ मित्र, ९ परम मित्र। यदि इतनी संख्या के अन्दर मन्त्र न आवे, तो इसी को दुबारा और तिबारा गिन ले।

अब '**अकडम-चक्र**' लिखा जाता है—

अकडम-चक्र

इसमें साधक अपने नाम के पहले अक्षर से दक्षिणावर्त-क्रम से उस प्रकोष्ठ तक गिने, जिसमें मन्त्र का पहला अक्षर हो। फलाफल इस प्रकार है—१ सिद्ध, २ साध्य, ३ सुसिद्ध, ४ अरि। इसी संख्या से दुबारा-तिबारा गिनना चाहिये, जब तक मन्त्राक्षरवाला प्रकोष्ठ न आ जाय। 'अरि'-मन्त्र न लेना चाहिये, **'साध्य'**-मन्त्र मध्यम है और **'सिद्ध'**, **'सुसिद्ध'**-मन्त्र उत्तम हैं।

इसी प्रकार **'अकथह-चक्र'** से भी शुभाशुभ मन्त्र जाना जाता है—इसकी गणना भी अकडम-चक्र की ही भाँति है—१ सिद्ध, २ साध्य, ३ सुसिद्ध और ४ अरि।

१	२	३	४
अ क थ ह	उ ङ प	आ ख द	ऊ च फ
५ ओ ड ब	६ ऌ झ म	७ औ ढ श	८ ॡ ञ य
९ ई घ न	१० ॠ ज भ	११ इ ग ध	१२ ऋ छ व
१३ अः त स	१४ ऐ ठ ल	१५ अं ण ष	१६ ए ट र

अकथह-चक्र

'ऋणि-धनि-चक्र' से भी मन्त्र का विचार किया जाता है। इस चक्र में ऊपर के अंक मन्त्र-वर्णों के हैं और नीचे साधक के नाम

ऋणि-धनि चक्र

				मन्त्राङ्क						
६	६	६	०	३	४	४	०	०	०	३
अआ	इई	उऊ	ऋॠ	ऌॡ	ए	ऐ	ओ	औ	अं	अः
क	ख	ग	घ	ङ	च	छ	ज	झ	ञ	ट
ठ	ड	ढ	ण	त	थ	द	ध	न	प	फ
ब	भ	म	य	र	ल	व	श	ष	स	ह
२	२	५	०	०	२	१	०	४	४	१
				साधकाङ्क						

ऋणि-धनि-चक्र

के स्वर और वर्ण अलग करके प्रत्येक के अंक अलग-अलग जोड़ ले फिर दोनों योगफलों में अलग-अलग आठ से भाग दे। शेष में मन्त्र का अंक अधिक होने पर वह ऋणी होता है और कम होने पर धनी। ऋणी मन्त्र से बहुत शीघ्र सिद्धि मिलती है। शेष के बराबर निकलने पर भी वह उत्तम होता है। धनी होने पर विलम्ब से सिद्धि मिलती है और यदि शेष शून्य हो, तो वह मन्त्र मृत्यु-कारक है।

उपर्युक्त प्रणाली के अनुसार भली प्रकार विचार कर गुरुदेव को अपने शिष्य को यथा-विधि मन्त्र की दीक्षा देनी चाहिये, जिससे शिष्य का कल्याण हो।

मन्त्र-संस्कार

दीक्षा ग्रहण करने के बाद दीक्षित को चाहिये कि वह अपने इष्ट-देवता के मन्त्र की साधना यथा-विधि करे। मन्त्र की साधना करने के पहले उसे मन्त्र का संस्कार करना चाहिये। मन्त्र के संस्कार दस बताये गये हैं, जिनके नाम ये हैं—१ जनन, २ दीपन, ३ बोधन, ४ ताड़न, ५ अभिषेक, ६ विमलीकरण, ७ जीवन, ८ तर्पण, ९ गोपन और १० आप्यायन। ये संस्कार अति आवश्यक हैं और इन्हें अवश्य करना चाहिये। यदि मन्त्र तीन या पाँच अक्षर का हो, तो दसों संस्कार एक ही दिन में कोई आठ-दस घण्टे के भीतर हो जाते हैं। यदि मन्त्र बड़ा हुआ, तो लगभग तीन दिन में दसों संस्कार कर लेते हैं। संस्कारों की विधि नीचे दी जाती है—

१ जनन—गोरोचन, कुंकुम या चन्दन आदि से भोज-पत्र पर आत्माभिमुख एक त्रिकोण लिखे। उसके तीनों कोणों में छः-छः समान रेखायें खींचे। इस प्रकार बने हुए ४९ त्रिकोणात्मक कोष्ठों में ईशान-कोण से क्रमशः मातृका-वर्ण लिखे। फिर देवता का उसमें आवाहन करे और मन्त्र के एक-एक वर्ण का उद्धार करके अलग पत्र पर लिखे। यही मन्त्र का जनन-संस्कार है।

२ दीपन—'हंस' मन्त्र से सम्पुटित करके एक हजार बार मन्त्र का जप करे। यह उसका दीपन-संस्कार होगा।

३ बोधन—'ह्रूँ' बीज से सम्पुटित करके पाँच हजार बार मन्त्र का जप करके उसका बोधन-संस्कार करे।

४ ताड़न—'फट्' से सम्पुटित करके एक हजार बार मन्त्र का जप करने से उसका ताड़न-संस्कार पूर्ण होता है।

५ अभिषेक—मन्त्र को भोज-पत्र पर लिखकर 'ॐ हंसः ॐ'

मन्त्र से उसे अभिमन्त्रित करे। फिर एक हजार बार जपे हुए जल से अश्वत्थ-पत्रादि द्वारा मन्त्र का अभिषेक-संस्कार करे।

६ **विमलीकरण**—मन्त्र को '**ॐ त्रों वषट्**' इस मन्त्र से सम्पुटित कर उसका एक हजार बार जप करे। यही मन्त्र का विमलीकरण-संस्कार होगा।

७ **जीवन**—मन्त्र को '**स्वधा-वषट्**' से सम्पुटित कर उसका एक हजार बार जप करने से जीवन-संस्कार पूर्ण होता है।

८ **तर्पण**—मूल-मन्त्र से दूध, जल और घृत द्वारा सौ बार तर्पण करने से यह संस्कार सम्पन्न होता है।

९ **गोपन**—मन्त्र को 'ह्रीं' बीज से सम्पुटित कर उसका एक हजार बार जप करे। यही मन्त्र का गोपन-संस्कार होगा।

१० **आप्यायन**—मन्त्र को 'ह्रौं' बीज से सम्पुटित करके उसका एक हजार बार जप करने से आप्यायन-संस्कार होता है।

इन संस्कारों के अतिरिक्त मन्त्र को चैतन्य करने के लिए निम्न क्रिया करनी चाहिये—

मन्त्र के पहले '**क्लीं श्रीं ह्रीं**' और अकार से लेकर क्षकार तक अनुस्वार-युक्त (अं आं इं ईं...हं लं क्षं) मातृका वर्ण लगाकर मन्त्र का उच्चारण करे। उसके बाद पुनः '**क्लीं श्रीं ह्रीं**' एवं मातृका वर्णों का पूर्व-वत् उच्चारण करे। इस प्रकार १०८ बार जप करे। इस प्रयोग से मन्त्र चैतन्य हो जाता है।

पुरश्चरण

'मन्त्र-संस्कार' और **'मन्त्र-चैतन्य'** की क्रियायें कर चुकने पर शुभ मुहूर्त में इष्ट-देवता के मन्त्र का **'पुरश्चरण'** करना आवश्यक है। शुभ मुहूर्त में पुरश्चरण का प्रारम्भ करना चाहिये। पुरश्चरण में मन्त्र की जितनी जप-संख्या निर्दिष्ट होती है, वह एक क्रम से जप कर पूरी की जाती है। यदि तीन अक्षरों का मन्त्र हो और उसका जप तीन लाख हो, तो नित्य-प्रति दश हजार जप करने से पुरश्चरण तीस दिन में पूरा हो जाता है। पुरश्चरण की अवधि में पुरश्चरण-कर्ता को संयम-पूर्वक अपना समय व्यतीत करना पड़ता है। नित्य सबेरे उठकर स्नान कर नित्य-कर्मों से छुट्टी पा वह अपने इष्ट-देवता के मन्त्र का जप आरम्भ करता है। निर्दिष्ट संख्या-जप कर चुकने पर वह हविष्यान्न का भोजन करता है। सन्ध्या-काल में नित्य-कर्म कर निशा-काल में इष्ट-देवता का स्मरण करते हुए वह भूमि पर शयन करता है। जब तक पुरश्चरण पूरा नहीं होता, तब तक उसकी दिन-चर्या पूर्ण संयम के साथ रहती है। वह हविष्यान्न-भोजन करता है और लोक-व्यवहार की बातों से अलग रहकर सदाचार-पूर्वक अपना समय व्यतीत करता है।

'पुरश्चरण' के पाँच अङ्ग हैं—१ जप (इष्ट-देवता की पूजा के सहित), २ होम, ३ तर्पण, ४ अभिषेक और ५ ब्राह्मण-भोजन। कुछ लोग होम आदि यथा-विधि न करके उन-उन अंगों के स्थान में दशांश से दूना जप कर डालते हैं, परन्तु यह प्रक्रिया ठीक नहीं है। पुरश्चरण में जप आदि उसके पाँचों अंग यथा-विधि करने से ही मन्त्र की सिद्धि होती है।

पुरश्चरण के जप-अङ्ग में देवता का यथा-विधि पूजन करके जप का विधान किया गया है। पूजा में स्थान-शोधन से लेकर आवरण-पूजन पर्यन्त सारी प्रक्रिया की जाती है। इस प्रक्रिया के करने में कम-से-कम दो घण्टे लगते हैं। इसके बाद जप करने का विधान है और जप में भी कम-से-कम दो घण्टे अवश्य लगते हैं। इस प्रकार पुरश्चरण के जप-अङ्ग में नित्य चार घण्टे का समय लगता है।

सु-संस्कृत माला लेकर जप करना होता है। जप-काल में घृत का दीपक साधक के सम्मुख बराबर जलता रहता है और पुरश्चरण संकल्प करके किया जाता है। 'ॐ तत्सत् अद्येत्यादि' इस संकल्प-वाक्य के अन्त में 'अमुक-गोत्रः श्रीमदमुक-देवशर्माहममुक-मन्त्र-सिद्धि-कामो तन्मन्त्रस्य इयत्-संख्यक-जपं तद्-दशांशं इयत्-संख्यक-हवन-इयत्-संख्यक-तर्पण-इयत् - संख्यक-अभिषेक-इयत् - संख्यक-ब्राह्मण-भोजनं तन्मन्त्रस्य पुरश्चरण-कर्मणि करिष्ये' यह पढ़कर सङ्कल्प किया जाता है।

होमादि करने में अशक्त होने पर उपर्युक्त सङ्कल्प-वाक्य में उक्त स्थल में 'अमुक-मन्त्रस्य करणक इयत्संख्यकामुकानुकल्पं इय-त्संख्यक-जपं इत्यादि रूप से वाक्य की योजना कर ले।'

नियत संख्या-जप समाप्त कर चुकने पर साधक अपने कल्प के अनुसार दशमांश मन्त्र-संख्या से 'हवन' करे।

हवन कुण्ड में अथवा स्थण्डिल (वेदी) में करे। हवन करने से पुरश्चरण की सिद्धि होती है। इस क्रिया के करने से मन्त्र विशेष रूप से जाग्रत होता है। अतएव पुरश्चरण में हवन विशेष भाव से करना चाहिये। कुण्ड-विधि से यदि हवन करने में कठिनाई हो, तो स्थण्डिल-विधि से ही करे।

हवन कर चुकने पर 'तर्पण' करे। तर्पण यदि नदी समीप हो, तो उसमें जाकर करे अथवा पूजा-गृह में एक बड़े ताम्र-पात्र में जल

भरकर तर्पण करे। नदी हो, तो नदी में नाभि-मात्र जल में खड़े होकर जल में इष्ट-देवता के यन्त्र की भावना करके उसमें सूर्य-मण्डल से तीर्थों का आवाहन कर होम की दशमांश संख्या का अपने इष्ट-देवता को तर्पण करे। अगर ताम्र-पात्र में करना हो, तो उसे जल से भरे और उसमें कर्पूरादि अष्ट-गन्ध तथा दूर्वा छोड़कर उस जल से तर्पण करे। मन्त्र के साथ **'अमुक-देवतां तर्पयामि नमः'** इस वाक्य की योजना कर देवता को जल की अञ्जलि प्रदान करे।

जब पूरी संख्या की जलाञ्जलि प्रदान कर चुके, तब उसके बाद उसी दिन अथवा दूसरे दिन तर्पण की संख्या का दशमांश अभिषेक अर्थात् **'मार्जन'** करे। नदी हो, तो नदी में, नहीं तो ताम्र-पात्र के जल से कुम्भ-मुद्रा से दूर्वा द्वारा अपने सिर पर मन्त्र के अन्त में **'अमुक-देवतां अभिषिञ्चामि नमः'** इस वाक्य को जोड़कर उससे अभिषेक करे।

मार्जन कर चुकने के बाद **'ब्राह्मण-भोजन'** करावे। होम के दशमांश-संख्यक ब्राह्मणों को भोजन कराना उत्तम, तर्पण के दशमांश-संख्यक ब्राह्मणों को भोजन कराना मध्यम और मार्जन के दशमांश-संख्यक ब्राह्मणों को भोजन कराना अधम कहा गया है। आवश्यक संख्या के ब्राह्मणों को आदर से आमन्त्रित करे। उनके आने पर उनका इष्ट-देवता के रूप में अर्घ्य-पाद्य से पूजन कर भक्ष्य, भोज्य, चर्व्य, चोष्य, लेह्य, पेय आदि षट्-रस व्यञ्जनों से उनको भोजन करावे और ताम्बूल तथा यथाशक्ति दक्षिणा देकर उन्हें सादर विदा करे।

यदि पुरश्चरण गुरुदेव की उपस्थिति में हो, तो और भी उत्तम होता है क्योंकि पुरश्चरण के सब अङ्गों की समाप्ति पर गुरुदेव से मन्त्र-सिद्धि का उसे आशीर्वाद मिल जाता है। इस अवसर पर को एक विधि है। हवन के अवसर पर जो घट-स्थापन होता है, उसके जल से गुरुदेव शिष्य का अभिषिञ्चन करते हैं और उसे आशीर्वाद

देते हैं, परन्तु यह क्रिया सभी को सुलभ नहीं है। बहुत ही कम ऐसे सौभाग्य-शाली पुरश्चरण करनेवाले होंगे, जिनको गुरु के सान्निध्य में पुरश्चरण करने का अवसर मिलता है।

'पुरश्चरण' करने में विशेष सावधानी रखनी पड़ती है। एक प्रकार का वह तपस्या का काल होता है। अतएव तपश्चर्या में जिस प्रकार शुद्धाचार तथा संयम का पालन करना पड़ता है, वही सब पुरश्चरण-काल में भी करना पड़ता है।

तान्त्रिक मन्त्र-साधना की यह तपस्या अधिक-से-अधिक दो-तीन महीने में समाप्त हो जाती है। अपने लम्बे जीवन में यदि कोई व्यक्ति इस छोटी-सी तपस्या के लिये भी तीन महीने का समय देना सम्भव नहीं कर सकता है, तो यह वास्तव में बड़े ही दुःख की बात है। इस साधना के करने से भविष्य जीवन में पूर्ण सफलता प्राप्त होती है और इस सफलता की प्राप्ति के लिए किसी के लिये भी दो-तीन महीने का समय देना कठिन नहीं है। अतएव जो भी व्यक्ति मन्त्र ग्रहण करे, उसके लिए अपने मन्त्र का **'पुरश्चरण'** करना परमावश्यक है।
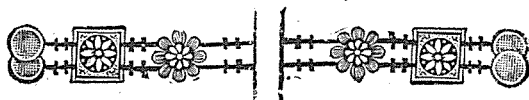
देवता का पूजन

पुरश्चरण के जो पाँच अङ्ग हैं, उनमें 'जप' उसका प्रारम्भ का अङ्ग है। इस जप-प्रक्रिया में देवता की पूजा अपनी विशेषता रखती है। देवता की पूजा किये बिना जो लोग मन्त्र का कोरा जप ही करते हैं, उनके उस जप से मन्त्र की सिद्धि नहीं होती है। जप की सिद्धि तभी होती है, जब वह साङ्गोपाङ्ग किया जाता है अर्थात् इष्ट-देवता की पूजा यथा-विधि करके जप करना। देवता की पूजा का तन्त्र में एक विशेष विधान है; जो अति उत्तम तथा वैज्ञानिक है। वह विधान पञ्च-शुद्ध्यात्मक पूजन है अर्थात् १ भूमि-शोधन, २ देह-शोधन, ३ द्रव्य-शोधन, ४ देवता-शोधन और ५ मन्त्र-शोधन। इन पाँचों शुद्धियों को करके ही मन्त्र का जप होता है।

भूमि-शोधन करने से साधक को अपने कार्य में किसी प्रकार के विघ्न का भय नहीं रहता। देह-शोधन से उसमें देवता का भाव आता है। पूजा-द्रव्य-शोधन से देवता की प्रीति प्राप्त होती है। देवता का शोधन करने से देवता के प्रत्यक्ष होने का अनुभव होता है। मन्त्र को शोधन करने से मन्त्र जाग्रत होता है। इन पाँचों क्रियाओं के करने से ही वस्तुतः मन्त्र सिद्ध होता है। अतएव जप-कर्ता को इन पाँचों शुद्धियों का ज्ञान अति आवश्यक है। यहाँ उनका वर्णन संक्षेप में इस प्रकार है—

(१) भूमि-शुद्धि—पूजा-गृह के स्थान को शुद्ध करना भूमि-शुद्धि है। द्वार-देवताओं का बाहर पूजन करके पूजा-गृह में प्रवेश करने के बाद साधक विघ्नोत्सारण कर पूजा-स्थान में सामान्य अर्घ्य

को स्थापना कर सबसे पहले भूमि-शोधन करता है। पहले वह घरणीदेवी को अर्घ्य देता है। उसके बाद ब्रह्मा तथा वास्तु-देवता का पूजन करता है। तदनन्तर वह मण्डप को सजाता है।

इस प्रकार भूमि-शोधन कर चुकने पर साधक आसन का शोधन करता है। इसके लिए वह कूर्म-चक्र के अनुसार आसन बिछाकर उस पर बैठता है और अपने दाहने ओर पूजा-सामग्री स्थापित कर सामने घृत का दीप जला कर वह उसके पास देवता का यन्त्र बनाकर उसे चौकी पर स्थापित करता है। तदनन्तर गुरु, गणेश और इष्ट-देवता को नमस्कार कर वह देह-शोधन की प्रक्रिया करता है।

२ **देह-शोधन**—देह-शोधन की प्रक्रिया में साधक पहले प्राणायाम करता है। फिर वह भूत-शुद्धि, तब प्राण-प्रतिष्ठा, उसके बाद सृष्टि-स्थिति-संहार मातृकाओं का न्यास, तदनन्तर इष्ट-देवता के ऋष्यादि, कराङ्ग, षडङ्ग तथा अन्याय आवश्यक न्यास करता है। इन प्रक्रियाओं से साधक का शरीर शुद्ध हो जाता है और वह देवता-स्वरूप हो जाता है।

देह-शोधन की क्रिया करने के बाद साधक इष्ट-देवता का अपने हृदय-कमल के दश-दल-पद्म पर मानस पूजन करता है। इसके लिए पहले वह पीठ-न्यास करता है। तब वह यथा-स्थान देवता का ध्यान कर उसका मानस पूजन, जप आदि करता है।

मानस पूजन कर चुकने पर अपने सामने स्थापित यन्त्र में देवता का पूजन करने के लिए वह विशेषार्घ्य आदि पात्रों की स्थापना करता है।* तदनन्तर वह देवता का अपने हृदय-कमल से यन्त्र के विन्दु में आवाहन करता है। आवाहनादि करने पर वह उसका अवगुण्ठन, सकलीकरण और अमृतीकरण करता है।

---

* इसके पहले वह द्रव्यादि-शोधन करता है।

३ देव-शुद्धि—अमृतीकरण करके वह उसका परमीकरण करता है। इस प्रक्रिया से देवता की शुद्धि होती है।

इसके बाद वह सोलह उपचारों से देवता का पूजन करता है। तदनन्तर उसकी आज्ञा ग्रहण कर वह आवरण-पूजन करता है। आवरण-पूजन कर चुकने पर वह इष्ट-देवता के मन्त्र का जप करता है।

४ मन्त्र-शुद्धि—प्रत्येक मातृका वर्ण के अन्त में अपने मन्त्र के एक-एक अक्षर की योजना कर समग्र मातृकाओं का जप करने से मन्त्र की शुद्धि हो जाती है। इस प्रकार मन्त्र शुद्ध करके साधक मन्त्र का यथा-संख्यक जप करता है। जप की समाप्ति पर देवता का स्तोत्र-पाठ कर वह अन्तिम पुष्पांजलि अर्पित कर देवता का विसर्जन करके अपने हृदय में उसे स्थापित करता है।

इष्ट-देव-पूजन की यह प्रक्रिया जब तक जप-संख्या पूरी नहीं हो जाती है, साधक को प्रतिदिन करनी पड़ती है। यह पूजन की सारी प्रक्रिया उसे गुरुदेव से प्राप्त होती है। इस प्रक्रिया के पूर्ण ज्ञान के बिना पुरश्चरण की सफलता नहीं होती। अतएव दीक्षित व्यक्ति को इस क्रिया का सम्यक् ज्ञान ध्यान देकर प्राप्त करना चाहिये। तान्त्रिक साधना का यही मूलाधार है।
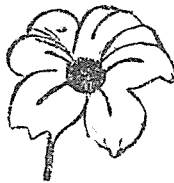
पुरश्चरण के नियम आदि

पुरश्चरण करनेवाले को पुरश्चरण-काल में खान-पान तथा रहन-सहन के कुछ विशेष नियमों का दृढ़ता के साथ पालन करना पड़ता है। उन नियमों का तन्त्र-ग्रंथों में विस्तार के साथ वर्णन मिलता है। यहाँ हम उन नियमों में से विशेष आवश्यक नियमों का संक्षेप में वर्णन करते हैं—

स्थान का नियम—सिद्ध-पीठ, पुण्य-क्षेत्र, नदी-तट, गुहा, पर्वत-शिखर, तीर्थ, सङ्गम, पवित्र जङ्गल, एकान्त उद्यान, विल्व-वृक्ष, पर्वत की तराई, तुलसी-कानन, गो-शाला (बैल-रहित), देवालय, पीपल या आँवले के वृक्ष के नीचे, पानी में या अपने घर में पुरश्चरण करने से शीघ्र फल मिलता है। सूर्य, अग्नि, गुरु, चन्द्रमा, दीपक, जल, ब्राह्मण और गौओं के सामने बैठकर जप करना उत्तम है। मुख्य बात यह है कि जहाँ बैठकर जप करने से चित्त की ग्लानि मिटे और प्रसन्नता बढ़े, वही स्थान श्रेष्ठ है। ब्रह्म-यामल में लिखा है कि गुरु के समीप अथवा जहाँ चित्त एकाग्र रह सके, उस स्थान में बैठकर पुरश्चरण की साधना करनो चाहिये। यदि ग्राम में पुरश्चरण करने का विचार हो, तो कूर्म-चक्र का शोधन करके उस स्थान पर बैठकर पुरश्चरण करना चाहिये। यदि पर्वत पर, समुद्र के किनारे, पवित्र वन में या नदी के किनारे पुरश्चरण करना हो, तो कूर्मशोधन की आवश्यकता नहीं है।

भोजन का नियम—अगस्त्य-संहिता में लिखा है कि हेमन्त ऋतु में उत्पन्न होनेवाले अन्न, मूँग, तिल, जौ, मटर, काकुन, वकुई,

सेंधा और समुद्र नमक, गाय का दूध, गाय का दही, गाय का घी, हरड़, पीपल, जीरा, सोंठ, इमली, केला, नारियल, नारंगी, आँवला, आम, गुड़ के अलावा ईख के रस की बनी वस्तु, शक्कर-मिश्री आदि, घृत की पकी वस्तुएँ—ये सब हविष्य हैं। पुरश्चरण करनेवाले को इन्हीं वस्तुओं में से यथा-रुचि संग्रह करके अपने उपयोग में लाना चाहिये।

पुरश्चरण में निषिद्ध वस्तुएँ—क्षार, नमक, मांस, गाजर, काँसे के बर्तन में भोजन करना, उड़द, अरहर, मसूर, कोदों, चना, बासी, घृत-रहित और कीड़ा पड़ा हुआ भोजन—ये सब निषिद्ध हैं। रामार्चन-चन्द्रिका में भी लिखा है कि मैथुन, रसिक वार्तालाप, ऋतु-काल को छोड़कर अपनी पत्नी तक का स्पर्श करना, शहद, कुटिलता, बाल बनवाना, उबटन लगवाना, बिना देवता को अर्पित किए हुए भोजन करना आदि बातें पुरश्चरण करनेवाले को निषिद्ध हैं।

पुरश्चरण करते समय साधक को आठ बातों का विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिये। इनके सम्बन्ध में सावधान रहने से उसे मन्त्र-सिद्धि शीघ्र ही प्राप्त हो सकेगी। वे बातें इस प्रकार हैं—

१ **भू-शय्या**—साधक को पवित्र वस्त्र पहनकर कुश या कम्बल आदि की शैय्या पर शयन करना चाहिये। प्रति-दिन पहनने के वस्त्र-सहित शैय्या को भी परिशुद्ध कर लेना आवश्यक है।

२ **ब्रह्मचारित्व**—काम-भाव के उद्दीपक कारणों से सर्वथा दूर रहना चाहिये।

३ **मौनावलम्बन**—साधक पुरश्चरण-काल में यदि मौन धारण कर ले अर्थात् किसी से बात-चीत न करे तो मिथ्या-भाषण, कटु-भाषण आदि से वह बच जायगा और इस प्रकार साधना का एक बड़ा भारी विघ्न सरलता से दूर हो जायगा।

४ **आचार्य वा श्रीगुरु-सेवा**—पुरश्चरण-काल में यदि साधक

को अपने गुरुदेव वा आचार्य की सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त हो सके, तो यह उसकी मन्त्र-सिद्धि में अति सहायक हो सकती है।

५ नित्य यथा-विधि स्नान—पुरश्चरण-काल में शारीरिक शुद्धि के लिये नियम-पूर्वक अवश्य स्नान करना चाहिये।

६ पूजा—इष्ट-देव का पूजन करने में किसी प्रकार का व्यतिक्रम कदापि न होने पावे।

७ दान वा त्यागेच्छा—पुरश्चरण-काल में सांसारिक लालसाओं से मन को हटाकर उसे देवता के चरणों में लगा देना चाहिये। भावनाएँ हों भी, तो त्याग की। यदि हो सके, तो अपनी सुविधा के अनुसार सत्पात्र को नित्य अथवा किसी अवसर-विशेष पर दान भी देते रहना चाहिये।

८ गुरु और देवता की स्तुति-वन्दना—अवकाश-काल में गुरुदेव तथा इष्ट-देवता की वन्दना अवश्य करनी चाहिये। व्यर्थ बातों में अपना समय नष्ट न करे।

मन्त्र-सिद्धि की इच्छा रखनेवाले साधक को विशेष कर भगवान् शङ्कर का यह वचन अवश्य स्मरण रखना चाहिये कि 'जिनकी जिह्वा परान्न से जल गई है, जिनके हाथ प्रतिग्रह से जले हुए हैं और जिनका मन पर-स्त्री के स्मरण से जलता रहता है, उन्हें भला मन्त्र की सिद्धि कैसे मिल सकती है?'

मन्त्र क्या हैं ?

मन्त्रों का असीम महत्त्व है। यहाँ तक माना जाता है कि देवता तक मन्त्र का महत्त्व मानते हैं। वेद की ऋचाएँ भी मन्त्र कहलाती हैं, परन्तु तन्त्र के मन्त्र अपना विशेष महत्त्व रखते हैं—रूप और प्रभाव दोनों में। वेद के मन्त्रों की अपेक्षा ये छोटे होते हैं और कुछ ही काल की साधना में साधक इनके द्वारा सिद्ध-मनोरथ हो जाते हैं। तन्त्र-मन्त्रों की संख्या सात कोटि मानी गई है, परन्तु वे सबके सब इस लोक में प्राप्त नहीं हैं। जो प्राप्त हैं, उनकी संख्या परिमित है। एकाक्षर मन्त्र से लेकर १०८ अक्षरों से भी अधिक संख्या के अक्षरों के मन्त्र प्राप्त हैं। इनमें एकाक्षर मन्त्र अधिक महत्त्व के माने जाते हैं। वे बीज-मन्त्र कहलाते हैं।

मन्त्र देवता के सूक्ष्म रूप माने जाते हैं। इनकी साधना से अर्थात् मनन करने से कुछ ही काल में देवता का साक्षात्कार हो जाता है। जिस ऋषि-मुनि को जो मन्त्र प्राप्त हुआ है, उस ऋषि का नाम उस मन्त्र के विनियोग में उल्लिखित रहता है।

मन्त्र की साधना कठिन नहीं है। लोक-कल्याणकारी श्रीशङ्कर ने लोक-हित की दृष्टि ही से तान्त्रिक मन्त्रों का ऋषियों द्वारा प्रकाश कर उनकी साधना का इतना सरल ढङ्ग बताया है कि साधारण-से साधारण लोग उनका साधन कर अपनी इच्छा की पूर्ति कर सकते हैं—इहलोक और परलोक दोनों बना सकते हैं।

यह सच है कि बाद को मन्त्र-शास्त्र के आचार्यों ने उनकी साधना की विधि में गूढ़ता भर दी और उन्हें रहस्य का रूप दे दिया, परन्तु वह सब गूढ़ता तथा उनकी रहस्यमयता सदय गुरु-

द्वारा हल हो जाती है और उनके साधन में, जैसा समझा जाता है, उतना अधिक कठिनाइयों का सामना नहीं करना पड़ता है।

जो यह कहा जाता है कि मन्त्रार्थ एवं पल्लवादि जाने बिना जो व्यक्ति मन्त्रों का साधन करता है, उसका सारा प्रयास व्यर्थ होता है, निस्सन्देह साधार है। परन्तु यह भी देखा गया है कि गुरु की कृपा से ऐसे व्यक्तियों ने भी साधना में सफलता प्राप्त की है, जो मन्त्रार्थ आदि का जानना क्या, मन्त्र का शुद्ध उच्चारण तक नहीं कर सकते थे। ऐसे भी व्यक्ति देखे गये हैं, जो मन्त्रार्थ क्या विन्दु, नाद, ध्वनि, पल्लव, सेतु, महा-सेतु, आदि-आदि न मालूम कितने मन्त्राङ्गों के भेदादिकों का ज्ञान रखते हुए भी अपनी बार-बार की साधना में बार-बार असफल हुए हैं। असल बात है गुरु की कृपा तथा अपना अटल विश्वास और निष्ठा। यही मन्त्र-साधना का सबसे बड़ा रहस्य है। तथापि शास्त्र-निर्दिष्ट मन्त्र की विशेषताओं का भी जानना प्रत्येक मन्त्र-साधक के लिए आवश्यक है।

यह तो स्पष्ट ही है कि प्रत्येक मन्त्र की साधना का जो क्रम मन्त्र-शास्त्र में लिखा मिलता है, वह यही है कि मन्त्र का विनियोग, उसका ऋषि-न्यास, कर-न्यास तथा षडङ्ग-न्यास, तदनन्तर देवता का ध्यान और उसका जप। परन्तु यह पर्याप्त नहीं है। इस छोटो-सी विधि के कुछ आधार-भूत सिद्धान्त भी हैं, जिनका उन्हीं ग्रन्थों में यथास्थान वर्णन मिलता है। गुरुदेव से उन्हें समझकर अपने इष्ट-देवता के मन्त्र के साधन में तत्पर होना चाहिये। यही साधन-क्रम है। इस क्रम की उपेक्षा करने से साधन में सफलता नहीं मिलती है।

मन्त्र-सम्बन्धी कुछ महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ हैं। उन सबका भी जानना प्रत्येक साधक के लिये आवश्यक है। यहाँ हम उनका वर्णन करते हैं—

(१) **मन्त्रों की कुल्लुका**—किसी मन्त्र का जप करने के पूर्व साधक को उसकी कुल्लुका सिर पर स्थापित कर लेनी चाहिये

अर्थात् मूर्द्धा में उसका न्यास कर ले। मुख्य मन्त्रों की कुल्लुकाएँ—

तारामन्त्र की कुल्लुका—ॐ ह्रीं स्त्रीं हूँ, काली—क्रीं हूँ स्त्रीं ह्रीं फट्, छिन्नमस्ता—श्रीं ह्रीं ह्रीं ऐं स्वाहा, वज्रवैरोचनी—श्रीं ह्रीं ह्रीं ऐं ह्रीं ह्रीं स्वाहा हूँ, भैरवी—ह स रैं, त्रिपुर-सुन्दरी—ऐं क्लीं ह्रीं त्रिपुरे भगवति स्वाहा अथवा क्लीं, मञ्जु-घोष—ॐ अ र ब च ल श्रीं, भुवनेश्वरी—ह्रीं, मातङ्गी—ॐ, धूमावती—ह्रीं, षोडशी—स्त्रीं, लक्ष्मी—श्रीं, सरस्वती—ऐं, अन्न-पूर्णा—क्लीं।

(२) मन्त्र-सेतु—मन्त्र का जप करने से पहले हृदय पर इसका जप कर लेना चाहिये। ब्राह्मण और क्षत्रिय साधक के लिए प्रणव, वैश्य के लिये 'फट्' और शूद्रों के लिये 'ह्रीं' मन्त्र-सेतु है।

(३) महा-सेतु—सभी समयों और सभी अवस्थाओं में मन्त्र-जप का अधिकार महा-सेतु के जप से मिल जाता है। त्रिपुरसुन्दरी का महा-सेतु 'ह्रीं', कालिका का 'क्रीं' और तारा का 'हूँ' है। अन्य सभी देवताओं का महा-सेतु 'स्त्रीं' है। महा-सेतु का जप मन्त्र-जप से पूर्व कण्ठ-देश में स्थित विशुद्ध-चक्र में करना चाहिये।

(४) निर्वाण—प्रणव के बाद 'अं' इत्यादि अनुस्वार युक्त समस्त स्वर-वर्णों की योजना कर अपने मन्त्र से संयुक्त करे। फिर मन्त्र के बाद 'ऐं' तथा अनुस्वार-युक्त समस्त स्वर-वर्णों सहित प्रणव की योजना करे। इस प्रकार सम्पुट करके मणिपूर-चक्र में जप करने से निर्वाण होता है।

(५) मुख-शोधन—जूठन, असत्य-भाषण और कलह-विवाद आदि से दूषित जिह्वा का शोधन करने के उद्देश्य से मुख-शोधन-मन्त्र शास्त्रों में बताये गये हैं। अपने मन्त्र के अनुसार मुख-शोधन मन्त्र का मन्त्र-जप से पूर्व दस बार जप कर लेना चाहिये। मुख्य मन्त्र इस प्रकार हैं—त्रिपुरसुन्दरी—श्रीं ॐ श्रीं ॐ श्रीं ॐ, श्यामा—क्रीं क्रीं क्रीं ॐ ॐ ॐ क्रीं क्रीं क्रीं, तारा—ह्रीं हूँ ह्रीं, दुर्गा—ऐं ऐं ऐं, बगला-मुखी—ऐं ह्रीं ऐं, मातङ्गी—ॐ ए ॐ,

लक्ष्मी—श्रीं, धूमावती—ॐ, धनदा—ॐ धूँ ॐ। अन्य देवताओं का ॐकार ही मुख-शोधन मन्त्र है।

(६) **मन्त्र के आठ दोष**—मन्त्र में भ्रम-वश आठ प्रकार के दोष आ जाया करते हैं, जो इस प्रकार हैं—

१. **अभक्ति**—जो साधक मन्त्र को केवल अक्षर-वर्ण मात्र समझता है या जो अपने मन्त्र को दूसरे के मन्त्र से हीन समझता है, उसकी मन्त्र-साधना में अभक्ति-दोष आ जाता है। इस दोष को दूर करने के लिए मन्त्र का अधिक से अधिक जप करना चाहिए। जप, हवन और तप से मन्त्र की अधिष्ठात्री देवता प्रसन्न होती है। उसकी प्रसन्नता से भक्ति का उदय होता है और तब मन्त्र सिद्ध होने में विलम्ब नहीं लगता।

२. **अक्षर-भ्रान्ति**—गुरु या शिष्य की भूल से मन्त्राक्षरों के उलट-फेर या कम-अधिक होने से यह दोष आ जाता है। इसके निवारण के लिये गुरु या उनके पुत्र या अन्य किसी साधक से फिर मन्त्र ग्रहण करना चाहिए।

३. **लुप्त**—मन्त्र में किसी वर्ण की न्यूनता लुप्त-दोष है।

४. **छिन्न**—यह दोष तब होता है, जब मन्त्र के किसी संयुक्त वर्ण में से कोई अंश छूट जाता है।

५. **ह्रस्व**—दीर्घ-वर्ण के स्थान पर ह्रस्व-वर्ण का उच्चारण।

६. **दीर्घ**—ह्रस्व का दीर्घ उच्चारण दीर्घ-दोष है।

७. **कथन**—जाग्रत् अवस्था में अपना मन्त्र किसी से कह देना।

८. **स्वप्न-कथन**—स्वप्नावस्था में अपना मन्त्र किसी को बतला देना स्वप्न-कथन दोष है।

उपर्युक्त ३, ४, ५, ६ दोषों का निवारण फिर मन्त्र ग्रहण करने से ही होता है और ७, ८ दोषों के लिए श्रीगुरुदेव जैसी व्यवस्था करें, करना चाहिए।

देवता

देवताओं की अपनी एक अलग सृष्टि है। यद्यपि उस सृष्टि-क्रम को एक ईश्वर के माननेवाले नहीं मानते। हमारे देश में भी ऐसे एकेश्वरवादी महात्मा हुए हैं, जिन्होंने अपनी एक की निष्ठा के आग्रह के कारण बहु-देव-वाद को कल्पना मात्र माना है। उनकी ऐसी निष्ठा उनके जैसे विचार के लोगों के लिए सर्वथा ग्राह्य है और अपनी ऐसी उच्च भावना के लिए वे दूसरों के द्वारा भी प्रशंसनीय हैं, परन्तु ऐसे निष्ठावानों के भावोद्रेक के कारण कोई सत्य बात झूठी नहीं मानी जा सकती।

हमारे यहाँ जहाँ 'एक ब्रह्म द्वितीयो नास्ति' कहा जाता है, वहाँ उसके साथ ही 'एकोऽहं बहु स्याम:' यह भी कहा जाता है, जिससे सिद्ध है कि देवताओं की अपनी अलग सृष्टि है। वेदों में भी बहुत से देवताओं का उल्लेख है। वैदिक ऋषियों ने उन सबका दर्शन किया है और उनके हृदयों में उनके पवित्र सूक्त आविर्भूत हुए हैं। इसी प्रकार तान्त्रिक ऋषियों को भी अपने सम-कालीन तथा पूर्व-वर्ती वैदिक ऋषियों की भाँति नाना देवी-देवताओं का साक्षात्कार हुआ है और उनके साधन के मन्त्र उन्हें मिले हैं।

इन सब देवताओं के अपने-अपने भिन्न-भिन्न लोक हैं, जहाँ निवास कर वे सारी सृष्टि के भिन्न-भिन्न भुवनों में अपने निर्दिष्ट कर्त्तव्यों का पालन करते रहते हैं। इन देव-देवियों का एक यह भी कर्त्तव्य है कि वे अपने भक्तों की पुकार पर उनके प्रति विशेष रूप से आकृष्ट हों। मन्त्र-साधना भक्तों की एक सर्वश्रेष्ठ पुकार है।

इन सब देवी-देवताओं की कितनी संख्या है और कौन किस

लोक में निवास करता है, इन सब बातों का विशद या सूक्ष्म विवरण विशाल संस्कृत-साहित्य में जगह-जगह देखने को मिलता है।

मन्त्र-शास्त्र में देवियों की साधना की मुख्यता प्रतिपादित की गई है। इसका कारण यह है कि मन्त्र-विद्या के ऋषियों ने सच्चिदानन्द के जिस अनिर्वचनीय रूप का दर्शन किया, वह उन्हें मातृ-रूप में ही दिखाई दिया। उनका यह दर्शन तथा अनुभव इतना अधिक सत्य सिद्ध हुआ कि देवियों की एक अलग सृष्टि ने भारतीय अध्यात्म-विद्या में एक विशिष्ट स्थान ग्रहण कर लिया। देवियों की उस महत्त्वपूर्ण सृष्टि का वर्णन संस्कृत के पवित्र ग्रन्थों में देवताओं के साथ यथा-स्थान दिया हुआ है और उनकी विशेष-ताओं का तद्वत् महत्त्व भी विशेष रूप से वर्णित है। परन्तु मन्त्र-विद्या में उनकी वैज्ञानिक ढङ्ग से जो विवेचना की गई है, उससे देवियों का महत्त्व सर्वोपरि स्थापित हो गया है। उसमें ठहराया गया है कि सच्चिदानन्द तभी सच्चिदानन्द है, जब उसमें पराम्बा अथवा चिन्मय शक्ति का दर्शन होता है। मन्त्र-विद्या की देवियों की सृष्टि उन्हीं परमा-शक्ति से सम्भूत हुई है और उन देवियों में भी मन्त्र-विद्या में वर्णित **'दश महा-विद्याओं'** को विशिष्ट स्थान दिया गया है।

मन्त्र-शास्त्र में वर्णित देवियों तथा देवताओं की कम संख्या नहीं है। उपासक उनका साधन करके अपना कल्याण-साधन करते हैं। तथापि यहाँ यह कहना ठीक ही होगा कि मातृ-रूप की साधना स्वभावतः ही अति मधुर होती है और यही मन्त्र-विद्या की साधना की एक विशेषता है। यही कारण है कि मन्त्र-शास्त्र में शाक्त-साधना अर्थात् शक्ति-साधना को विशेष गौरव दिया गया है।

मन्त्र-शास्त्र के द्रष्टा ऋषियों ने ब्रह्म के दो रूप निर्दिष्ट किये हैं—एक निष्कल और दूसरा सकल। उनका निष्कल ब्रह्म का वह

रूप है, जब सारी सृष्टि उसमें लय रहती है और सकल वह रूप है, जब सृष्टि का उद्भव होता है और यही बात उसके मातृ-रूप के सिद्धान्त का समर्थन करती है अर्थात् जब ब्रह्म में शक्ति का उदय होता है, तभी वह सच्चिदानन्द कहलाता है और यही शक्ति वह पराम्बा शक्ति है, जो सृष्टि-रचना का क्रम स्थापित करने के लिए पहले ब्रह्मा को जन्म देकर उन्हें सरस्वती-रूप की शक्ति प्रदान करती है, जिससे वे सृष्टि के कार्य में सलग्न होते हैं। तदनन्तर वह विष्णु को प्रकट करती है और उन्हें लक्ष्मी-रूप शक्ति प्रदान करती है, जिससे वे सृष्टि के पालन-पोषण का कार्य सँभालते हैं। इसके बाद वह शिव को प्रकट करती है और उनको स्वयं अपने आपको अर्पित करके उन्हें सृष्टि-संहार का कार्य सौंपती है।

कालान्तर में जब शिव को अपने गौरव-पूर्ण पद का अभिमान होता है, तब वे अपनी शक्ति की उपेक्षा करते हैं और वे उनका त्याग कर स्वतन्त्र विचरण के लिए चल देते हैं; परन्तु वे जिस दिशा की ओर पैर बढ़ाते हैं, उसी ओर उन्हें एक दिव्य शक्ति का दर्शन होता है। जब दशों दिशाओं में उन्हें इस प्रकार दस दिव्य मूर्तियों के दर्शन होते हैं, तब उनका अभिमान दूर होता है और वे पुनः मां के शरणापन्न होते हैं।

उस महा-शक्ति के जो ये दश रूप शिव का अभिमान दूर करने के लिए आविर्भूत हुए थे, वही रूप तन्त्रों की परम प्रसिद्ध 'दश महा-विद्याएँ' हैं। इसी कारण तन्त्र में उनके मन्त्र-द्रष्टा ऋषियों ने उनकी साधना को अत्यधिक महत्त्वपूर्ण निर्दिष्ट किया है, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि मन्त्र-विद्या में निर्दिष्ट अन्य देवी-देवताओं की उपासना हीन या घटिया है क्योंकि सभी देव और देवियाँ उसी चिन्मय महा-शक्ति की विशेष विभूतियाँ हैं और उनमें से चाहे जिसकी साधना की जाय, यदि साधक की निष्ठा पराम्बा के शरणापन्न होने की होगी, तो उसी साधना के द्वारा उसका

लाभ होगा। हाँ, यह अवश्य है कि बहुत सी देवी-देवताओं की साधनाएँ इह-लौकिक उद्देश्य के लिए निर्दिष्ट की गई हैं। निस्संदेह इनकी साधनाओं से उपर्युक्त महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति नहीं हो सकेगी।

वास्तव में बात यह है कि मन्त्र-विद्या में देवताओं की साधना का जो वर्गीकरण किया गया है, वह लोकाभिरुचि को देखकर किया गया है। कौन-सी देवता की साधना से किस बात की सिद्धि मिलती है, यही बात उक्त वर्गीकरण से प्रकट होती है और यह इस बात का भी प्रमाण देता है कि देव और देवियों की सृष्टि में कहाँ कैसा वर्गीकरण है। साधक अपनी अभिरुचि के अनुसार अपनी उपासना के लिये उन देवो-देवताओं में से किसी एक की उपासना ग्रहण करने में पूण स्वतन्त्र है।

यहाँ यह पुनरुक्ति करना अनुचित नहीं है कि देव और देवियों की जो अलग सृष्टि है और उनके जो भिन्न-भिन्न लोक हैं, वे उसी प्रकार वास्तव में स्थित हैं, जैसे कि हमारा यह जगत् है। ऐसी दशा में इन दोनों स्थितियों के वास्तविक रूप को समझना मनुष्य की अपनी-अपनी वुद्धि तथा ज्ञान से ही सम्बन्ध रखता है। जो इसे असत्य समझता है, वह उसे असत्य समझने को स्वतन्त्र है और जो इसके वर्तमान स्वरूप की वास्तविकता देखता है, वह ऐसा करने को स्वतन्त्र है। असल बात है 'अपनी-अपनी करनी पार उतरनी'। इसमें जरा भी वाद-विवाद की गुन्जायश नहीं है।

माला-संस्कार

मन्त्र-साधना में सु-संस्कृत माला का अपना विशेष महत्त्व है। माला का संस्कार करने के लिये पीपल के नौ पत्तों की आवश्यकता होती है। इनमें से एक पत्ता बीच में रखकर उसके चारों ओर शेष आठ पत्ते इस प्रकार सजाकर रखने होते हैं कि उनका अष्ट-दल-कमल का सा आकार बन जाय। अब बीचवाले पत्ते पर माला को रखकर 'ॐ अं आं' इत्यादि से लेकर 'हं लं क्षं' तक के समस्त स्वर और वर्णों का उच्चारण करे और पंच-गव्य से माला को सिंचित करे। इसके बाद निम्न-लिखित 'सद्योजात'-मन्त्र पढ़कर उसे शुद्ध जल से धो डाले—

ॐ सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमो नमः।

भवे भवे नाति-भवे भवस्व मां भवद्-भवाय नमः॥

तदनन्तर नीचे लिखे 'वाम-देव'-मन्त्र से माला पर चन्दन, अगर, गन्ध आदि प्रदान करे—

ॐ वाम-देवाय नमो ज्येष्ठाय नमः श्रेष्ठाय नमो रुद्राय नमः कालाय नमः कल-विकरणाय नमो बल-विकरणाय नमः।

बलाय नमो बल-प्रमथनाय नमः सर्व-भूत-दमनाय नमो मनोन्मनाय नमः।

अब 'अघोर'-मन्त्र से धूप प्रदान करे। अघोर-मन्त्र इस प्रकार है—

ॐ अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोर-घोरतरेभ्यः सर्वेभ्यः सर्व-शर्वेभ्यो नमस्तेऽस्तु रुद्र-रूपेभ्यः ।

इसके बाद निम्नलिखित 'तत्पुरुष'-मन्त्र से लेपन करे—

ॐ तत्पुरुषाय विद्महे महा-देवाय धीमहि तन्नो रुद्रः प्रचोदयात् ।

यह सब कर चुकने पर माला के प्रत्येक दाने पर एक-एक बार या सौ-सौ बार 'ईशान'-मन्त्र का जप करे, जो इस प्रकार है—

ॐ ईशानः सर्व-विद्यानामीश्वरः सर्व-भूतानां ब्रह्माधि-पतिर्ब्रह्मणोऽधि-पतिर्ब्रह्मा शिवो मे अस्तु सदा-शिवोम् ।

जप करने के बाद माला में यथा-विधि अपने इष्ट-देवता की प्राण-प्रतिष्ठा करे। तब इष्ट-मन्त्र से उसकी पूजा करके इस प्रकार उसकी स्तुति करे—

माले माले महा-माले सर्व-तत्व-स्वरूपिणि !
चतुर्वर्गस्त्वयि न्यस्तस्तस्मान्मे सिद्धिदा भव ।।

माला में यदि शक्ति की प्रतिष्ठा की गई हो, तो इस प्रार्थना के पहले साधक 'ह्रीं' और जोड़ ले। साथ ही माला की पूजा में लाल फूलों का उपयोग करे। वैष्णव साधक निम्न-लिखित मन्त्र से माला की पूजा करे—

ॐ ऐं श्रीं अक्ष-मालायै नमः ।

❋ ● ❋

परिशिष्ट

१—संक्षिप्त कलावती-दीक्षा

शिष्य दीक्षा के दिन के तीन दिन पहले क्षौरादि करे। फिर दीक्षा के दिन के पूर्व-दिन उपवास रखे और सब पापों के विनाश के भाव से १०८ बार या एक सहस्र बार गायत्री का जप करे तथा तिल-काञ्चन का दान दे। दीक्षा के दिन नित्य-कर्म से छुट्टी पाकर शिष्य स्वस्ति-वाचन पूर्वक निम्न प्रकार सङ्कल्प पढ़े—

ॐ अद्येत्यादि अमुक-गोत्रः श्री अमुक-देव-शर्मा धर्मार्थ-काम-मोक्ष-प्राप्ति-कामः अमुक-देवतायाः अमुकाक्षर-मन्त्र-दीक्षा-प्राप्त्यर्थमहमावश्यक-कर्म करिष्ये।

इस प्रकार सङ्कल्प करने के बाद शिष्य गुरु का वरण करे। इसमें पहले शिष्य गुरु के प्रति हाथ जोड़कर कहे—'**ॐ साधु भवानास्ताम**'।

गुरु उत्तर दे—'**ॐ साध्वहमासे।**'

शिष्य कहे—'**ॐ अर्चयिष्यामो भवन्तं।**'

गुरु अनुमति दे—'**ॐ अर्चय।**'

इसके बाद शिष्य गन्ध, पुष्प, वस्त्र आदि द्वारा गुरु का पूजन करे। फिर गुरुदेव की दाहिनी जानु को स्पर्श कर वह यह सङ्कल्प करे—

'ॐ अद्येत्यादि अमुक-गोत्रः अमुक-देव-शर्मा अमुक-देवतायाः मत्कर्तृकामुक-मन्त्र-दीक्षा-कर्मणि

अमुक-गोत्रं अमुक-देव-शर्माणमेभिः पाद्यादिभिरर्चितं गुरुत्वेन भवन्तमहं वृणे ।'

इस पर गुरु स्वीकृति दे—'ॐ **वृतोऽस्मि ।'**

गुरु का वरण हो जाने के बाद शिष्य गुरु से कहे—'ॐ **यथा-विहितं गुरु-कर्म कुरु ।'**

गुरु उत्तर दे—'ॐ **यथा-ज्ञानतः करवाणि ।'**

इसके बाद गुरु द्वार-देवता का पूजन करे। तदनन्तर पूजा-स्थान में आकर वह नित्यार्चन-क्रम से इष्ट-देवता का सविधि पूजन प्रारम्भ करे।

जब श्रीपात्र का स्थापन और पूजन कर चुके, तब वह दीक्षा-भिषेकार्थ कलश का स्थापन-पूजनादि करे। यथा—

सर्वतोभद्र-मण्डल बनाकर 'ॐ **मण्डलाय नमः**' से उसकी पूजा करे। फिर धान्य से कर्णिका के मध्य-भाग की पूजा कर अक्षत छोड़े और तब उस पर दर्भ बिछाकर उसके ऊपर अक्षत-युक्त विष्टर (कुश) स्थापित करे। इसके बाद मण्डल पर 'ॐ **आधार-शक्त्यै नमः**' आदि मन्त्रों से पीठ-देवताओं का पूजन कर मण्डल पर प्रद-क्षिण-क्रम से 'ॐ **यं धूम्रार्चिषे नमः**' आदि से दस वह्नि-कलाओं की पूजा करे। फिर कुम्भ को '**फट्**' मन्त्र से धोकर चन्दन, अगरु और कपूर से उसे धूपित करे और त्रिगुण-सूत्र से उसे वेष्ठित कर गन्ध-पुष्प से 'ॐ **कुम्भाय नमः**' से उसकी पूजा करे। तब कुश, अक्षत और नवरत्न कुम्भ में छोड़कर 'ॐ' का उच्चारण करते तथा कुम्भ एवं पीठ-देवता के ऐक्य का ध्यान करते हुए उसे पीठ के ऊपर स्थापित करे।

अब कुम्भ के ऊपर प्रदक्षिणा-क्रम से 'ॐ **कं भं तपिन्यै नमः**' आदि मन्त्रों से सूर्य की द्वादश कलाओं की पूजा करे। फिर आत्मा और मन्त्र के ऐक्य की भावना कर देय मन्त्र तथा मातृका-मन्त्र का

प्रति-लोम जप कर मूल-मन्त्र का उच्चारण करते हुए कुम्भ को देवता समझ उसे तीर्थ-जल से पूर्ण करे। तब प्रदक्षिण-क्रम से उस जल में चन्द्रमा की अमृतादि षोडश कलाओं का न्यास कर 'ॐ अं अमृतायै नमः' आदि मन्त्रों से उनकी पूजा करे। फिर अन्य शङ्ख-पात्र को तीर्थ-जल से भर गन्धाष्टक द्वारा आलोड़ित कर उसी जल में सभी कलाओं का आवाहन कर उनकी पूजा करे।

अब शङ्ख-पात्र के तीर्थ-जल को कुम्भ के तीर्थ-जल में छोड़ दे। इसके बाद अश्वत्थ, पनस और आम्र-पल्लवों को इन्द्रवल्ली-लता द्वारा वेष्ठित कर उसे कल्प-वृक्ष समझते हुए उससे कुम्भ का मुख ढँक दे। फिर उस कुम्भ-मुख पर फल और अक्षत-युक्त शराव (मिट्टी का प्याला) को कल्प-वृक्ष का फल समझते हुए स्थापित करे। तदनन्तर दो रेशमी वस्त्रों से कुम्भ को वेष्ठित कर कुम्भ में मूल-मन्त्र से यन्त्र-विग्रह के सहित देवता का ध्यान कर यन्त्र के विन्दु में यथा-विधि उसका आवाहन-पूजनादि करे।

कलश में देवता के पूजनोपरान्त देय मन्त्र के दशो संस्कार करे। यथा—

१ जनन—मातृका यंत्र लिखकर मन्त्र का उद्धार करे।

२ जीवन—प्रणव-पुटित कर मन्त्र के प्रत्येक वर्ण का दश बार जप करे।

३ ताड़न—मन्त्र के वर्णों को चन्दन से लिखकर 'यं' वीज पढ़कर कुश से ताड़न करे।

४ हनन—मन्त्र-वर्ण लिखकर 'रं' वीज से मन्त्राक्षरों की संख्या से हनन करे।

५ अभिषेचन—'मन्त्रं अभिषिञ्चयामि नमः'—इस मन्त्र से पीपल के पत्र से मन्त्र-वर्ण-संख्या से जल द्वारा उसका अभिषेक करे।

६ विमलीकरण—'ॐ ह्रौं' से मन्त्र को सम्पुटित कर २५ बार जप करे।

७ आप्यायन—'यं' बीज से पुष्प द्वारा जल से मन्त्र का दस बार प्रोक्षण करे।

८ तर्पण—'मन्त्रं तर्पयामि स्वाहा'—इस मन्त्र से मधु-मिश्रित जल से मन्त्र का १० या १०० बार तर्पण करे।

९ दीपन—'ॐ ह्रीं श्रीं'—से पुटित कर मन्त्र का १०८ बार जप करे।

१० गुप्ति—मन्त्र को अप्रकट रखे।

इसके बाद गुरु दोनों सूतकों की निवृत्ति के लिए मन्त्र को प्रणव से पुटित कर सात बार जप करे। तदनन्तर गुरु कलशस्थ पंच-पल्लवों से कलश के जल द्वारा शिष्य का अभिषेक करे। यथा—

ॐ सुरास्त्वामभिषिञ्चन्तु ब्रह्म-विष्णु-शिवादयः।
वासुदेवो जगन्नाथस्तथा सङ्कर्षणो विभुः॥
प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च भवन्तु विजयायते।
आखण्डलोऽग्निर्भगवान् यमश्च निऋतिस्तथा।
वरुणः पवनश्चैव धनाध्यक्षस्तथा शिवः।
ब्रह्मणा सहिता ह्येते दिक्-पालाः पान्तु ते सदा।
कीर्तिर्लक्ष्मीर्धृतिर्मेधा पुष्टि श्रद्धा क्षमा मतिः।
बुद्धिर्लज्जा-वपुः शान्तिर्माया निद्रा च भाविनी॥
एता त्वामभिषिञ्चन्तु देव-पत्न्यः समागताः॥
आदित्यश्चन्द्रमा भौमो बुध-जीव सितार्कजाः।
एते त्वामभिषिञ्चन्तु खड्गः केतुश्च पूजिताः॥
देव-दानव-गन्धर्वा यक्ष-राक्षस-पन्नगाः।
ऋषयो मुनयो गावो देव-मातर एव च॥

देव-पत्न्यो द्रुमा नागा दैत्याश्चाप्सरसां गणाः ।
अस्त्राणि सर्व-शास्त्राणि राजानो वाहनानि च ॥

औषधानि च रत्नानि कालस्यावयवाश्च ये ।
सरितः सागराः शैलाः तीर्थानि जलदा ह्रदाः ।
एते त्वामभिषिञ्चन्तु धर्म-कामार्थ-सिद्धये ॥

ॐ गुरवश्चाभिषिञ्चन्तु सिञ्चेद् गणपतिस्तथा ।
अभिषिञ्चेच्च वटुकः क्षेत्रपालोऽभिषिञ्चतु ॥

ॐ योगिन्यश्चाभिषिञ्चन्तु अभिषिञ्चन्तु भैरवाः ।
पीठानां शक्तयश्चाभिषिञ्चन्तु कालिका सदा ॥
ॐ श्रीचक्रस्याभिषिञ्चन्तु क्रमेण चक्र-नायिकाः ।
कामेश्वर्यभिषिञ्चेत् सिञ्चेच्च भग-मालिनी ॥
ॐ नित्यक्लिन्नाभिषिञ्चेत् भेरुण्डाप्यभिषेचयेत् ।
अभिषिञ्चेत् वह्नि-संस्था महा-विद्येश्वरी सिञ्चेत् ॥
ॐ शिवदूत्यभिषिञ्चेत् त्वरिता सेचयेत् सदा ।
नवमी चाभिषिञ्चेत् कुल-देव्यानि सुन्दरी ॥
ॐ नित्यानित्याभिषिञ्चेत् नील-पताकिनी ।
विजया चाभिंसिचेत् सिंचेत् सर्व-मङ्गला ॥
ॐ सिंचेज्ज्वाला-मालिनी च विचित्रा सेचयेत् सदा ।
अनुलोम-विलोमेन सिंचेच्च तिथि-रूपतः ॥
ॐ सिंचन्तु अणिमाद्यादि-सिद्धयोऽष्टौ क्रमेण हि ।
अणिमाद्यभिंषिचेत् लघिमा चाभिषिञ्चतु ॥

ॐ महिमाद्यभिषिंचेत् ईशित्वा सेचयेत् तथा ।
वशिन्याद्याभिषिंचेत् प्राकाम्या सेचयेत्तथा ॥
ॐ ततोऽभिषिंचेत् प्राप्तिश्च सिंचेत् कामावसायिका ।
अभिषिंचेच्च ब्रह्माणी सिंचेन्माहेश्वरी तथा ॥
ॐ कौमारी चाभिषिंचेत् वैष्णवी चाभिषिञ्चतु ॥
वाराही चाभिषिंचेत् इन्द्राणी चाभिषिञ्चतु ॥
ॐ चामुण्डाप्यभिषिंचेत् महा-लक्ष्मी सिचेत्तथा ।
सर्व-संक्षोभिणी सिंचेत् सिंचेत् विद्राविणी तथा ॥
ॐ सर्वाकर्षिण्यभिषिंचेत् सर्व-वशीकरिणी तथा ।
सिंचेत् सर्वोन्मादिनी च अभिषिंचेत् महांकुशा ॥
ॐ अनङ्ग-कुसुमा सिंचेदनङ्ग-मेखला तथा ।
अनङ्ग-मदना सिंचेदनङ्ग-मदनातुरा ॥
ॐ अनङ्ग-लेखा सिंचेदनङ्ग-वेगिनी तथा ।
सिंचेदनङ्ग-कुसुमा अनङ्ग-मालिनी सिंचेत् ॥
एता गुप्ततरा देव्यः सर्व-संक्षोभणे स्थिताः ।
अभिषिञ्चन्तु ताः सर्वाः चक्रस्था नायिका-गणाः ॥
ॐ सर्व-संक्षोभिणी-शक्तिरभिषिंचेत् सदा च सा ।
सर्व-विद्राविणी शक्तिरभिषिञ्चतु सर्वदा ॥
सिंचेत् सर्वाकर्षिणी च सर्वाह्लादिनी तथा ।
ॐ सर्व-सम्मोहिनी सिंचेत् सर्व-स्तम्भ-कारिणी ॥
सिंचेत् सर्व-जृम्भणी च सर्व-सत्व-वशङ्करी ।

ॐ सिंचेत् सर्व-रंजनी च सर्वोन्मादिनी तथा ।
सर्वार्थ-साधिनी सिंचेत् सर्व-सम्पत्ति-पूरणी ॥
ॐ सर्व-मन्त्र-मयी सिंचेत् सर्व-द्वन्द्व-क्षयङ्करी ।
एतास्तु सर्व-दायिन्यः सौभाग्य-चक्रमागताः ॥
ॐ अभिषिञ्चन्तु ताः सर्वाः सौभाग्य-चक्र-नायिकाः ।
सर्व-सिद्धि-प्रदा सिंचेत् सर्व-सम्पत्प्रदा तथा ॥
सर्व-प्रियङ्करी सिंचेत् सर्व-मङ्गल-कारिणी ।
सिंचेत् सर्व-कामदा च सर्व-दुःख-विमोचिनी ॥
सर्व-मृत्यु-प्रशमनी सर्व-विघ्न-विनाशिनी ।
सर्वाङ्ग-सुन्दरी सिंचेत् सर्व-सौभाग्य-दायिनी ॥
एतास्तु कुल-कौलिन्यश्चाभिषिञ्चन्तु सर्वदा ।
बहिर्दशार-चक्रस्थाः समस्ताः चक्र-नायिकाः ॥
ॐ सर्वज्ञा चाभिषिञ्चेत् सर्व-शक्त्यभिषिञ्चतु ।
सर्वैश्वर्य-प्रदा सिञ्चेत् सर्वानन्द-मयी तथा ॥
ॐ सर्व-व्याधि-विनाशिनी च सर्वाधार-स्वरूपिणी ।
सर्व-पाप-हरा सिंचेत् सर्वानन्द-मयी सिंचेत् ॥
ॐ सर्व-रक्षा-स्वरूपिणी च सर्वेप्सित-फल-प्रदा ।
एतानि गर्भ-योगिन्यः सर्व-रक्षा-करा स्मृताः ॥
ॐ अभिषिञ्चन्तु ताः सर्वा निगर्भाश्चक्र-नायिकाः ।
वशिनी चैव वाग्देवी अभिषिंचेत् समाहिताः ॥
ॐ कामेश्वरी मोदिनी च विमला अरुणा सिंचेत् ।

जयिनी च ततः सिंचेत् सर्वेश्वरी तथा ॥

ॐ कौलिनी चाभिषिञ्चेत् सर्व-साधक-सिद्धये ।
एता रहस्य-योगिन्यः सर्व-रोग-हरा स्मृताः ॥

ॐ अभिषिञ्चन्तु ताः सर्वा चक्रस्था वसु-नायिकाः ।
त्रिकोणस्था महादेवी अभिषिञ्चेत् सुन्दरी ॥

ॐ इन्द्राद्याश्चाभिषिञ्चिन्तु रुद्रा एकादशास्तथा ।
सर्वे ते चाभिषिञ्चन्तु ब्रह्म-विष्णु-शिवादयाः ॥

ॐ सर्वा नद्योऽभिषिञ्चन्तु समुद्राद्याश्चा ये परे ।
एते त्वामभिषिञ्चान्तु पर्वताः सुख-वासनाः ॥

तदनन्तर शिष्य बचे हुए जल से आचमन कर वस्त्र-युगल पहन गुरु के निकट बैठे। तब गुरु अपने देवता को शिष्य में संक्रान्त हुआ समझे और दोनों स्थानों के देवताओं में ऐक्य का चिन्तन करते हुए गन्धादि-द्वारा देवता का पूजन करे। तब 'ॐ सहस्रारे हुँ फट्' से शिष्य का शिखा-बन्धन कर और 'फट्' से उसका संरक्षण कर उसके शरीर में वह तीन कुशों से कला-न्यास करे। यथा—

चरण-तल से जानु-पर्यन्त—ॐ निवृत्यै नमः ।
जानु से नाभि-पर्यन्त—ॐ प्रतिष्ठायै नमः ।
नाभि से कण्ठ-पर्यन्त—ॐ विद्यायै नमः ।
कण्ठ से ललाट-पर्यन्त—ॐ शान्त्यै नमः ।
ललाट से ब्रह्मरन्ध्र-पर्यन्त—ॐ शान्त्यतीतायै नमः ।
पुनः ब्रह्मरन्ध्र से ललाट-पर्यन्त—ॐ शान्त्यतीतायै नमः ।
ललाट से कण्ठ-पर्यन्त—ॐ शान्त्यै नमः ।
कण्ठ से नाभि-पर्यन्त—ॐ विद्यायै नमः ।
नाभि से जानु-पर्यन्त—ॐ प्रतिष्ठायै नमः ।

जानु से चरण-तल-पर्यन्त—ॐ निवृत्यै नमः।

कला-न्यास के बाद गुरु शिष्य के मस्तक पर हाथ रख देय मन्त्र का १०८ बार जप करके कहे—'अमुक-मन्त्रं तेऽहं ददामि।' यह कहकर वह शिष्य के हाथ में जल दे। इस पर शिष्य कहे—'ददस्व।' तब गुरु कहे—'अयं मन्त्र आवयोः तुल्य-फलदो भवतु।'

इसके बाद गुरुदेव ऋष्यादि-संयुक्त मन्त्र को शिष्य के दाहने कान में तीन बार सुनावे। स्त्री तथा शूद्र शिष्य के बाएँ कान में मन्त्र सुनाना चाहिये।

मन्त्र सुनने के बाद शिष्य गुरु का साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम करे और कहे—

त्वत्प्रसादादहं देव! कृत-कृत्योऽस्मि सर्वतः।
माया-मृत्यु-महापाशाद् विमुक्तोऽस्मि शिवोऽस्मि च॥

इस पर गुरु कहे—

उत्तिष्ठ वत्स! मुक्तोऽसि सम्यगाचार-वान् भव।
कीर्ति-श्री-कान्तिमेधायुर्बलारोग्यं सदाऽस्तु ते॥

उपर्युक्त वाक्य कहकर दण्ड-वत् प्रणाम करते हुए शिष्य को गुरु उठावे। इसके बाद शिष्य गुरु, मन्त्र और देवता को एक रूप समझकर १०८ बार मन्त्र का जप करे। फिर हाथ में कुश, जल और तिल लेकर—'ॐ अद्यैतद् कृतैतद् अमुक-देवतायाः अमुक-मन्त्र-ग्रहण-प्रतिष्ठार्थं दक्षिणाभिधं द्रव्यं वह्नि-दैवतं अमुक-गोत्राय अमुक-शर्मणे गुरवे तुभ्यमहं सम्प्रददे'—यह सङ्कल्प पढ़े और यथा-सामर्थ्य दक्षिणा देकर गुरुदेव को सन्तुष्ट करे। तदनन्तर ब्राह्मणों को भोजन करा उन्हें दक्षिणा दे स्वयं भी भोजन करे।

२—कूर्मचक्र

जिस स्थान में पुरुष दीप्यमान होता है, उसे दीप्त-स्थान कहते

हैं और दीप-स्थान का आश्रय लेकर जो कर्म किया जाता है, वह फल-प्रद होता है। इसके लिए जप-पूजादि के लिए मनोनीत स्थान में यहाँ छपे हुए चित्र के अनुसार 'कूर्म-चक्र' बनावे।

कूर्म-चक्र

इस चक्र के जिस कोष्ठ में उक्त स्थान (ग्राम, नगर आदि) के नाम का पहला अक्षर हो, उसे कूर्म का मुख समझे। मुख के दोनों ओर के कोष्ठ उसके हाथ; हाथों के नीचेवाले दो कोष्ठ उसकी कुक्षियाँ; कुक्षियों के नीचेवाले दो कोष्ठ उसके पैर और शेष कोष्ठ उसकी पूँछ जानना चाहिए। इसी प्रकार मध्य-वर्ती नौ कोष्ठों का भी विभाजन कर ले।
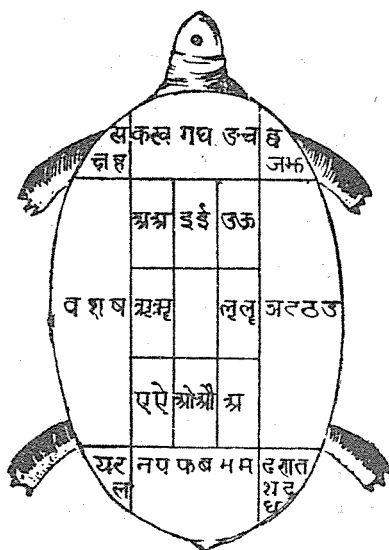
मण्डप के जिस भाग में कूर्म का मुख हो, वहीं बैठकर जप-पूजादि कार्य करने से मन्त्र सिद्ध होता है। हाथवाले भाग में कार्य करने से साधक अल्प-जीवी, कुक्षि में उदासीन, पैर में दुखी और पूँछ में करने से बन्धन तथा उच्चाटनादि से पीड़ित होता है।

३—मन्त्र-साधन का एक अन्य उपाय

कभी-कभी पुरश्चरण सिद्ध नहीं होता। उस दशा में वीराचारी साधक मन्त्र की सिद्धि के लिये निम्न संस्कारों का उपयोग करते हैं। उक्त संस्कार ये हैं—

१ **आमण-संस्कार**--वायु-बीज 'यं' से सम्पुटित मन्त्र को कर्पूर-चन्दन से लिखकर उसका पूजन, जप और होम करे।

२ **बोधन**—सारस्वत बीज 'ऐं' से सम्पुटित मन्त्र का जप करे।

३ **वश्य**—अलक्तक, चन्दन, कूट, हल्दी और मादन-शिला (शिलाजीत) के योग से भोज-पत्र पर मन्त्र को लिखकर उसे कण्ठ में पहने।

४ **पीडन**—अधरोत्तर योग से पैरों तक जप कर अधरोत्तर-रूपिणी देवता का ध्यान करे और अर्क (मदार) दुग्ध से मन्त्र को लिखकर उक्त मन्त्र से दिन-प्रतिदिन होम करे।

५ **पोषण**—बाला के त्र्यक्षर वीजों—'**ऐं क्लीं सौः**' से मन्त्र को सम्पुटित कर उसका जप करे और गाय के दूध तथा मधु से मन्त्र को अपने हाथ में लिखे।

६ **शोषण**—वायुबीज 'यं' से सम्पुटित मन्त्र को श्रेष्ठ भस्म से लिखकर उसका यन्त्र बनावे और गले में उसे धारण करे।

७ **दाहन**—अग्निवीज 'रं' को मन्त्र के एक अक्षर के आगे, पीछे, ऊपर और नीचे ब्रह्म-वृक्ष (पीपल) के तेल से लिखे और उसका यन्त्र बनाकर उसे गले में पहने।

४—दश महा-विद्या एवं पञ्च-देवों के मन्त्र

१ भगवती काली : (१) क्रीं

(२) क्रींक्रींक्रीं ह्रींह्रींह्रीं हूंहूं दक्षिणे कालिके क्रींक्रींक्रीं ह्रींह्रींह्रीं हूंहूं स्वाहा।

२ भगवती तारा : ह्रीं स्त्रीं हूं फट्।

३ भगवती षोडशी : (१) श्रीबाला त्रिपुरसुन्दरी —ऐं क्लीं सौः।

(२) श्री ललिता त्रिपुरसुन्दरी

[श्रीविद्या]—कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं ।

(३) षोडशी महा-त्रिपुरसुन्दरी—

श्रींह्रींक्लींऐंसौः ॐ ह्रींश्रीं क-५ ह-६ स-४
सौः ऐंक्लींह्रींश्रीं ।

४ भगवती भुवनेश्वरी : ह्रीं

५ भगवती छिन्नमस्ता : श्रींह्रींक्लींऐं वज्र-वैरोचनीये
हूं हूं फट् स्वाहा ।

६ भगवती भैरवी : हसैं हसकरीं हसैं ।

७ भगवती धूमावती : धूं धूं धूमावती स्वाहा ।

८ भगवती बगला : ॐ ह्लीं बगलामुखि सर्व-दुष्टानां वाचं मुखं स्तम्भय जिह्वां कीलय कीलय बुद्धिं नाशय ह्लीं ॐ स्वाहा ।

९ भगवती मातङ्गी : ॐह्रींक्लीं मातङ्ग्यै फट् स्वाहा ।

१० कमला : श्रीं ।

११ पञ्च-देव :

(१) भगवान् शिव : नमः शिवाय ।

(२) भगवान् विष्णु : ॐ नमो नारायणाय ।

(३) भगवान् सूर्य : ह्रां ह्रीं सः ।

(४) भगवान् गणेश : गं गणपतये नमः ।

(५) भगवती दुर्गा : दुं दुर्गायै नमः ।

५—स्त्री-गुरु की महिमा

'स्त्री' में साक्षात् भगवती प्रकृति के पुण्य स्वरूप का दर्शन मिलता है। 'श्री दुर्गा सप्तशती' के ग्यारहवें अध्याय में 'नारायणी स्तुति' में देवताओं ने स्पष्ट कहा है—

विद्याः समस्तास्तव देवि ! भेदाः,
स्त्रियः समस्ता सकला जगत्सु ।

अर्थात् संसार में समस्त स्त्रियाँ देवी की ही कलायें हैं।

यही कारण है कि वैदिक संस्कृति में नारी-पूजा को परमावश्यक माना गया है। लोक-प्रसिद्ध सूक्ति है कि—

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते तत्र रमन्ते देवताः ।

अर्थात् जहाँ नारियाँ (स्त्रियाँ) पूजी जाती हैं, वहाँ देवता आनन्द मनाते हैं।

स्त्रियों में भी 'माता'-रूप सर्व-सम्मति से आदि-पूज्य है—

जननी जन्म-भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी ।

अर्थात् जननी (माता) का गौरव स्वर्ग से भी बढ़कर है।

इत्यादि प्रमाणों एवं मान्यताओं को दृष्टि में रखते हुए तन्त्र-शास्त्र में 'स्त्री-गुरु' को जो सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है, वह सर्वथा उचित ही है। स्त्रियों में भी यदि अपनी 'माता' ही गुरु-रूप में किसी साधक को सुलभ हो जायँ, तो वह अत्यधिक भाग्यशाली माना जाता है। इस सम्बन्ध में तन्त्रोक्त प्रमाण निम्न प्रकार है—

स्त्रियो दीक्षा शुभा प्रोक्ता, मातुश्चाष्ट-गुणा स्मृता ।

अर्थात् स्त्री के द्वारा की गई मन्त्र-दीक्षा कल्याण-कारिणी कही गई है और माता के द्वारा की गई दीक्षा का फल आठ गुना अधिक होता है।

'स्त्री-गुरु' की खोज करते समय साधक को तन्त्र के निम्न वचन को ध्यान में रखना चाहिए—

साध्वी चैव सदाचारा, गुरु-भक्ता जितेन्द्रिया ।
सर्व-मन्त्रार्थ-तत्त्वज्ञा, सुशीला पूजने रता ।
गुरु-योग्या भवेत् सा हि, विधवा परिवर्जिता ॥

अर्थात् जो 'स्त्री' सदाचारिणी, गुरु-भक्ता, पतिव्रता, मन्त्रों के अर्थ और उनके तत्त्व को जाननेवाली, सुशोला तथा पूजन में तत्पर रहती है एवं सधवा है, वह गुरु बनाने योग्य होती है।

ऐसी 'स्त्री' को खोज निकालना कठिन नहीं है। कितने हो पूर्णाभिषिक्त साधकों की पत्नियाँ अपने पति के सहयोग से पूर्णाभिषेक-संस्कार से सम्पन्न होती हैं। यदि साधक उनकी कृपा प्राप्त कर सके, तो वह सहज ही **'स्त्री-गुरु'** से उत्तम दीक्षा पाकर अपनी साधना में अधिक सफल हो सकता है।

स्त्री-साधिकाओं के लिए तो **'स्त्री-गुरु'** की अनिवार्य रूप से आवश्यकता होती है।

'तन्त्र' में **'स्त्री-गुरु'** का विशेष ध्यान भी निर्दिष्ट किया गया है, जो निम्न प्रकार है—

सहस्रारे महा-पद्मे किंजल्क-गण-शोभिते,
पद्म-राग-समाभासां रक्त-वस्त्र-सुशोभनाम् ।
रक्त-कङ्कण-पाणिं च रक्त-नूपुर-शोभिताम्,
शरद-विन्दु-प्रतीकाश-रक्तोद्भासित-कुण्डलाम् ।
तरुणारुण-कल्पाभां करुणा-पूर्ण-लोचनाम्,
वराभय-करां शान्तां स्मरामि नव-गौरवीम् ।
स्व-नाथ-वाम-भागस्थां प्रफुल्ल-पद्म-पत्राक्षीम्,
प्रसन्न-वदनां क्षीण-मध्यां ध्याये शिवां गुरुम् ॥

मन्त्र-साधना की समस्त गुत्थियों को सुलझाने में **'कौल-कल्पतरु' पण्डित देवीदत्त शुक्ल जी** द्वारा रचित यह पुस्तक अपने आप में बेजोड़ है। थोड़े में सभी रहस्य स्पष्ट कर दिए गए हैं। **मन्त्र-साधना** में सफलता-प्राप्ति हेतु यह अत्युपयोगी है।

कल्याण मन्दिर प्रकाशन
इलाहाबाद-२११००६